

Presented

With best compliments to

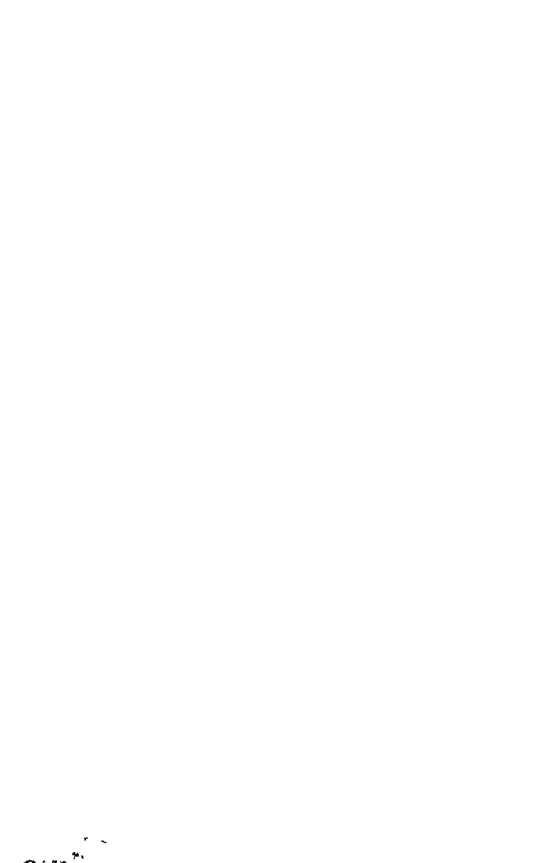
Sethi Jain Library

By Bikaner

Panna Samant Lalchand

In sweet memory of their father
Late Seth Sunnchandji Shendani
Bagra (Gujarat).

11th Nov. 1943



जैन-जगती और लेखक

मैं न कवि हूँ, न काव्यकला का पारखी, इसलिये जैन-जगती की कविता की नानो हुई कसौटियों पर कस कर उसका मूल्यांकन करना मेरे अधिकार से बाहर की बात है। पर अगर हृदय की रागात्मक वृत्तियों का कविता के साथ कोई सम्बन्ध है तो मैं कहूँगा कि 'जैन-जगती' में मुझे लेखक की हार्दिकता का काफी परिचय मिला है।

पुराक के नाम, शैली, धृष्ट और विषय-प्रतिपादन से यह तो स्पष्ट ही है कि भारत के राष्ट्रकवि भी मैथिलीशरणजी गुप्त की सुन्दर कृति 'भारत-भारती' से लेखक को पर्याप्त प्रेरणा मिली है। लेखक ने जैन-समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्यत का जो चित्र अंकित किया है, उसमें कुछ ही स्थल हैं, जहाँ मैं लेखक की मनोभावना का समर्थन नहीं कर सकता। पर ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं। लेखक जिसके प्रति और जो कुछ कहना चाहता है, उसमें यह काफी सफल हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। अगाध निद्रा में सुन पड़े हुए जैन-सनातन को जागृत करने का, उसको नव चैतन्योदय का नव संदेश देने का, और जीवन के नये आदर्शों की प्रेरणा देने का लेखक का प्रयत्न स्पष्ट है, इसमें मत-वैमिन्य की जगह भी गुंजाइश नहीं है। जिस तरिका से लेखक का हृदय जल रहा है, उसी की अनुभव करने के लिये 'जैन-जगती' में उसने सारे जैन-पुरुषों को आह्वान दिया है। उसका यह आह्वान सदा है, सजीब है और अभिनन्दनीय है। यह आग पूरी तरह सुजगी नहीं है, लेखक का प्रयत्न उसको प्रवर्धित करने का है जिससे सनातन की प्रगति के मार्ग में रोड़े

जैन-जगती

अतीत काल

नमो नमो

हे रामदे ! हमारे पर तुम्हारे पर हमारे पर हमारे पर
मम हो हो है का देना—मम हमारे पर है।
हे रामदे ! हमारे पर तुम्हारे पर हमारे पर हमारे पर
तुम्हारे पर हमारे पर हमारे पर हमारे पर है ॥ १ ॥

नमो नमो

नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो
नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो
नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो
नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो ॥ २ ॥

नमो नमो

नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो
नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो
नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो
नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो ॥ ३ ॥



मन में बड़े बड़े कल्पित कल्पित क्या होता नहीं ?
 जो ते तुझ ही कम, क्या करता ते पड़ा नहीं ?
 यह विषय बर्तमान है—हम जानते निश्चय है;
 सबकुछ जेबों अट रहे—निर गे दयालु है ॥ ६ ॥

मनोर का लंबन-विषय सुन है—जग जानता
 हुआ हुआ जबलोक खि की रोकें क्या वह नमता ?
 हुआ हुआ है काव जो वह कल निश्चय भी जानता
 तुम्हें हर मन-पद को फिर से हरा कर लपटा ॥ १० ॥

हा ! जैन पुन में भाग्य-दिनकर कल तेरा हो गया !
 जो काव तक तेरे गान में फिर नहीं लेता गया !
 क्यों क्यों ! अब तक तो रहे हो कल्पित-रत्न-धन में !
 परपल जानद ने हर वैभव हनाय हाँन में ॥ ११ ॥

कल न होता को मनों के प्रार-प्राण काव है;
 विद्या—मरता—मरता—मरता—मरता—मरता है ।
 कल हुर ये देह विदिते काव जग में होता है;
 होतोन परि इनकी दम, ये किरा जाते होता है ॥ १२ ॥

विदित के वैदित ते जो हो रहा कल्पित है
 यह तो हमारे जग का दम एव कल्पित को है;
 नष्ट, यह, तारे तथा इन जग पर कल्पित का;
 कल्पित तक भी अब हमारे जग का विदित का ॥ १३ ॥





ॐ श्रीगणेशाय नमः

विपत्तौ दयालु माया मे, हा ! शेष आगे भी नहीं,
इत आइ माया मे कद कया अंग गृहे भी नहीं !
इतिहास ' ' काल दान ! इतिहास ! माया पर माया ही मा !
अविनाश सब मा'द्वारा का भी अंत फिर पूरा हुआ ! ॥ १३७ ॥

बन'नी १ काल माया है नया वि'द्वे' विपत्तौ मे,
परी पू' का वि'द्वे' का का प्रसन्न फिर मे नया मे।
अनुमान, वि'द्वे' आ'द्वि वि'द्वे' वाक्य समाप्त हो'ने रहे,
नया नया दूर पर प्रत्येक फिर वि'द्वे' नया वि'द्वे' रहे ॥ १३८ ॥

विपत्तौ दयालु माया मे, ' ' काल दान ! इतिहास ! माया पर माया ही मा !
अविनाश सब मा'द्वारा का भी अंत फिर पूरा हुआ ! ॥ १३९ ॥

विपत्तौ दयालु माया मे, ' ' काल दान ! इतिहास ! माया पर माया ही मा !
अविनाश सब मा'द्वारा का भी अंत फिर पूरा हुआ ! ॥ १४० ॥

विपत्तौ दयालु माया मे, ' ' काल दान ! इतिहास ! माया पर माया ही मा !
अविनाश सब मा'द्वारा का भी अंत फिर पूरा हुआ ! ॥ १४१ ॥



१४४ १४५
हा ! बागभट-से नागभट-से घोर बालक अग्र कहाँ !
सौराष्ट्र ! तेरे लाल ये अनमोल होरे हैं कहाँ !

२४६ २४७ २४८ २४९ २५०
आमात्य आंधू विमल, उदयन, शान्तनु भौता तथा—
होने न यदि सौराष्ट्र में, सौराष्ट्र होता अन्यथा ॥ २४६ ॥

गुजरातपति नृप सिद्ध^{१०१} के, सौराष्ट्रपति नृप भीम^{१०२} के—
ये ढालने वाले हमी साम्राज्य की दृढ़ नीम के।
आमात्य वस्तुपाल^{१०३} बहे क्या बिस तरा के घोर थे !
इनके^{१०४} सहोदर वन्धु भी आमात्य थे, रणधीर थे ॥ २४७ ॥

इन पौरवर्णी वन्धुओं के संग में क्या शक्ति थी !
सुलतान आलम कुतुब^{१०५} की चलती न कोई मुक्ति थी।
सौराष्ट्रपति नृप भीम के यदि ये अनुग होते नहीं;
सौराष्ट्र के इतिहास, बर्णन दूसरे होने बही ॥ २४८ ॥

गुजरात भोजराट^{१०६} के थे नाम के अनुरूप ही;
ये वन्धु रामराट^{१०७} उनके घोरवर लक्ष्य ही।
भीमर्मा^{१०८} भीनेमनी^{१०९} भीमरुद्रता धर्ममा^{११०};
सब थे वन्धुन घर घोर भट हा ! बर्ण हो बने आने ! ॥ २४९ ॥

हम दूर जाने की नहीं है आर से गुन बह रहे;
बस अन्त से बंद सीजिये जो वसिल रो में बह रहे।
इतिहास राजस्थान पर, क्या क्या नहीं है जानने ?
सब बर्ण हमसे आज भी भूपाल^{१११} बह बर मानने ॥ २५० ॥



गमना हमारी मोहरी पर आज तक होती रही;
रहा, पाँच, सादरा, दीस कोटी ध्वज हमें बहती रही;
निर्धन हमारे समने घर सार्वभौमिक भूष था;
ये दिन दिवस थे भाग्य के, यह दिन का नहिं रूप था ॥ २६६ ॥

बर साह^{१००} हमने पाठ पौढ़ गमना नगना हो गये;
जिनके चहो सफ़ाट संशुद्ध 'सादराही' गम गये।
गमना हमारे नाम के पहले अतः पद साह का;
सफ़ाट के पद 'साह' के भी बाद गमना 'साह' का ॥ २६७ ॥

साह^{१००} मे^{१००}, साह^{१००} मे^{१००} अतः हमने हो गये;
साह^{१००} मे^{१००} 'साह^{१००} मे^{१००}' सोचल सोचि हो गये।

॥ १०० ॥ ॥ १०० ॥ ॥ १०० ॥ ॥ १०० ॥
जिनका, धना, गीत, जगदसाह केने साह थे।
साह^{१००} मे^{१००} था हृदय जिनका, दिन कीने साह थे ॥ २६८ ॥

जब देखते हैं भूखें भूख, जिनका पहले साह है,
जब सिद्धि के यह समने साह^{१००} मे^{१००} साह^{१००} मे^{१००} है।
साह^{१००} मे^{१००} जन्म के अन्तिम ही साह^{१००} मे^{१००} है।
हम देना के यह भय था के अन्तिम है साह^{१००} मे^{१००} है ॥ २६९ ॥

कोटी साह^{१००} का बहो बहा कर्म होत साहिने।
जिनके हुए की साह^{१००} मे^{१००} केने साह^{१००} मे^{१००} है।
साह^{१००} मे^{१००} जन्म के अन्तिम ही साह^{१००} मे^{१००} है।
हम देना के कोटी साह^{१००} मे^{१००} केने साह^{१००} मे^{१००} है ॥ २७० ॥

सन्तान

सन्तान सब गुणवान हैं, बलवान हैं, धोमान हैं;
माता पिता में भक्ति १ के प्रति सम्मान है ।
माता पिता का पुत्र से, अतिराय सुता से प्रेम है;
संतान के कल्याण में, माता-पिता का स्नेह है ॥ २८४ ॥

जब देव सदश हो पिता, देवी स्वरूपा मातृ हो;
सन्तान उत्तम क्यों न हो, ऐसे सगुण जब पितृ हो ।
पति पत्नि के गुणबुझ का सन्तान होती योग है;
ये गुण्य-गूणक राशिबी का गुणनफल है, योग है ॥ २८५ ॥

दाम्पत्य-जीवन—

सन्तान आशापालिनी है, नारि आशकारिणी;
सब कार्य-प्राणाभृत्य है, समृद्धि है अनुसारिणी ।
दाम्पत्य जीवन क्यों न हो फिर सौख्यकर उनका सदा;
निर्मल सरोवर पद्मयुत लगता न सुन्दर क्या सदा ? ॥ २८६ ॥

कर्मेष्वाचरण—

हो कूकड़^{१११} का कूकड़ हमके पूर्व ही सब जग गये;
जिनरात्र का करके स्मरण सब प्रति-क्रमण में लग गये ।
आलोचना, पचपाण कर गुरुदेव वर्द्धन हो गये;
यों धर्म-गुरुओं से निपट गृह-धर्म-रत सब हो गये ॥ २८७ ॥

स्वाध्याय^{११२}, पूजन, दान, संयम, तप तथा गुर्वर्चना;
कर्ण्डव हैं ये नित्य के अरु हैं अतिध्वज्ययना ।
ये दम्भ कर बाधा विविध रहने न चलती रह हैं;
तन-प्राण की, धन-पेरा की करने न ये परवाह हैं ॥ २८८ ॥

द्विचिन्तन—

निःशुल्क होती है चिकित्सा, शुल्क शुद्ध भी है नहीं;
देखो ननुज, पशु आदि सब की है चिकित्सा हो गयी।
यदि-शुद्ध हमारा आज भी निःशुल्क व्यापक दे रहा;
यह भूत भारतवर्ष की शुद्ध शुद्ध मूलक भावना रहा ॥ २०६ ॥

—संक्षेप—

हैं जान, पुर सारे सरोवर, प्रेननद व्यवहार है;
हर एक का दुख हो रहा सब के लिये दुख भार है।
सब के भगवानोपल निमित्त ये कृपक करते जान हैं;
हैं कस्मियों तक जिस गर्व, कल सैर हन पर जान है ॥ २१० ॥

सब धोर सब धोर हैं, सब धोर सब धोर हैं सभी,
 हैं सब धोर सब धोर, हैं सब धोर सब धोर सभी।
 सब धोर सब धोर सब धोर, सब धोर सब धोर हैं,
 सब धोर सब धोर सब धोर सब धोर सब धोर हैं ॥ ३३३ ॥

मर में पानी बहने-सीध में सुख हो तो
 योग्य सुख पर योग्य ही सर्वत्र मर है देखो ।
 योग्य सुख पर सुख की योग्य न सर्वत्र मर है ।
 यदि मर ही यदि में सर्वत्र योग्य मर है ॥ २५ ॥

ਸਰ ਸਾਸ-ਮੁਰ ਪਰ ਸਾਸ-ਮੁਰ ਹੈ, ਸਾਸ-ਮੁਰ ਸਾਸ-ਮੁਰ ਹੈ
 ਮੁਰੀ ਕਾਇਮ ਹੈ ਕਾਇਮ, ਸਾਸ ਸਾਸਿ ਸਾਸ ਸਾਸਿ ਹੈ।
 ਮੁਰੀ ਕਾਇਮ ਹੈ ਕਾਇਮ ਹੈ, ਕਾਇਮ ਕਾਇਮ ਕਾਇਮ ਹੈ।
 ਸਾਸ-ਮੁਰ ਸਾਸ-ਮੁਰ ਹੈ ਸਾਸ-ਮੁਰ ਸਾਸ-ਮੁਰ ਹੈ ॥੧॥

ॐ अतोत खण्ड ॐ

औदार्य-वेता भूष हैं; दुष्काल भी पड़ते नहीं;
पण्डांश कर से कर अधिक नहीं भूष लेने हैं कहीं।
कर भूष जितना ले रहे, सब व्यय प्रजा हित कर रहे;
अनिवार्य विद्या हो रही, गुरुकुल सभी थल चल रहे ॥ ३१४ ॥

देखो यहाँ होते नहीं यों घूस के व्यापार हैं;
मामीण जन पर आज-से होते न अत्याचार हैं।
नृप आप जाकर माम में हैं पूछते, 'क्या हाल हैं' ?
कैसा प्रजापति वह भला काटे न दुर तत्काल दे ॥ ३१५ ॥

यों भ्रूण-हत्या, अपहरण देखो कहीं होते नहीं;
दुःशीलता की बात क्या ! रतिचार तिल छूते नहीं।
हा ! वृद्ध भारत ! पुत्र तेरे जन्मते थे गुण भरे;
हा ! हंत ! अब तो प्रौढ़ भी हैं दीखते अवगुण भरे !! ॥ ३१६ ॥

तीर्थ-यात्रा—

अथ अन्त में धर्षण तुम्हें हम तीर्थ-यात्रा का कहे;
फिर से-सभी वातावरण संक्षेप में तुमको कहे।
घन-पेरा-जैमव-भाव का सब कुछ पता मिल जायगा;
कुछ उक्त में से होगया विस्मृत, नया हो जायगा ॥ ३१७ ॥

हे तीर्थ-यात्रा धीज क्या ? श्री मंथ फिर क्या हैं अहो !
जातीय सम्मेलन अहो ! ये घट गये कब से कहो ?
क्यों अमल, आवक उस तरह से आज मिलने हैं नहीं ?
क्यों देरा, जाति, सुवर्मा पर सुविचार अब होने नहीं ? ॥ ३१८ ॥

ॐ अतीत खण्ड ॐ

परिवार सह चेटक यदि जिन धीर को सेवा करें;
फिर आत्मजाएँ सप्त उनकी क्यों न जिनवर को करें ?
उनकी यहाँ पर आत्मजाओं का न वर्णन हो सके;
यदि वर्ण अर्णव भर सके, यह वर्ण मुझ से हो सके ॥ ३३४ ॥

यह चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र जो इतिहास में विख्यात हैं;
यश-कीर्ति जिनकी आज भी संसार में प्रख्यात है।
जिसको अधूरे विज्ञान थे बौद्ध-धर्मी कह रहे;
विद्वान् अथ नृप चन्द्र को सय जैन हैं यतला रहे ॥ ३३५ ॥

वीरभय^{३१०} साकेतपुर^{३१०} के कुछ भवन खण्डित शेष हैं;
कुछ राजगृह^{३११} चम्पापुरी^{३१२} में खण्ड विगलित शेष हैं।
उज्जैन^{३१३}, मिथिला^{३१४}, पटन^{३१५} के शिल-पत्र तो तुम देख लो;
वर्णन हमारा दे रही भावस्ति^{३१६}, इसको लेख लो ॥ ३३६ ॥

गिरनार^{३१७}, शत्रुघ्न^{३१८} कहो ये तीर्थ कब से हैं बने,
सम्मत्त^{३१९} गिरिवर का कहो वर्णन कहाँ तुमसे बने ?
क्या पौत्र हैं सरवर मुररान^{३२०} ? नाम शायद ही मुना
अर्थात् यो जिन धर्म भारतवर्ष में व्यापक बना ॥ ३३७ ॥

पंजाब, उत्कल, मध्यभारत, मगध, कौशल, अङ्ग में,
सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, दक्षिणराष्ट्र वङ्ग में।
अर्थात् आर्यावर्त में, सब धल अनार्यावर्त में—
जिन धर्म प्रसरित हो पुरा या कोल, आरा, वर्त में ॥ ३३८ ॥

लड़ू कलह में तुम घताओ आज तक किसको मिले;
पद-त्राण के अतिरिक्त भाई ! और दूजे क्या मिले ।
अपशब्द, निंदावाद तो हा ! हंत ! नरदनवाद है;
जब तक न मूलोच्छेद हो, फिर क्या जिनेश्वरवाद है !! ॥ ३५६ ॥
हा ! ये दिगम्बर श्वेत अम्बर श्वानवत हैं लड़ रहे;
पद-त्राण पावन स्थान में इनमें परस्पर चल रहे ।
हा ! नाथ ! यह क्या हो गया ! निशिकर अनाकर हो गया !
पृथक्त्व में अनुभव हमारा भार हमको हो गया !! ॥ ३६० ॥

बिगड़ा न कुछ भी है अभी, बिगड़ा यदि हम सोच लें;
ऐसे न निःसृत प्राण हैं जो एक पद दुर्भर चलें।
यदि अथ दशा ऐसी रही, तब तो हमारा अन्त है;
हा! हंत! हा! हा! अन्त! हा! हा! हंत! हा! हा! अन्त है ॥३६॥

जैन धर्म पर प्रत्याचार—

नृप^{३३०} कल्कि के दुष्कृत्य^{३३१} हम कुछ चाहते कहना नहीं;
कुछ पुण्यनिष्ठ^{३३२} महीप का व्यवहार भी कहना नहीं ।
दुष्कृत्य इनके आज भी नुत्रित हृदय पर पायेंगे;
जिनको क्षमण करने हुये क्षुत आपके नुत्त जायेंगे ॥ ३६२ ॥

पहिने हुये पद-श्राल तक ये शीप पर धें जा चढ़े;
करने हमें ये देश बाहर के लिये जाने दढ़े ।
हनको गिराया अग्नि में, हनको डुबाया धार में,
न विचार था तब काल में, तब काल भी न विचार में ॥ ३६३ ॥

मैं पूर्व हूँ घटला चुना, मय शौर्य-परिचय दे चुना;
या आत्म-बल कैसा हमारा, वह तुम्हें घटला चुना ।
जब आत्म-बल ने शत्रु को हम कर विजय पाते नहीं;
तब तब के अतिरिक्त साधन हमरा फिर था नहीं ॥ ३६६ ॥

वैसा हमारा धर्म था, वैसा हमारा आज है;
यह मानते लजित नहीं—वैसे नहीं हम आज हैं ।
हम पूजते हैं आपने, क्या आप वैसे हैं सभी ?
निर दोष मय हम पर धरो, आती तुम्हें नहीं शर्म भी ॥ ३६७ ॥

इन पाठ को आगे बढ़ा भगवा न करना है हमें;
विशुद्ध पाठक पूरा का जड़भूत खोता है हमें ।
जब क्या, किसी का दोष हो, वह भट्ट भारत हो चुना;
हम-आपनत का नारा हो यदि, स्वर्ग फिर भी हो चुना ॥ ३६८ ॥

बर्तमान और वैदिक-बर्त—

हैं बर्तन पारो आज भी, निर्वीर्य पाते हो सभी;
हा ! बर्तन-विहारी हो गये, मय बर्तन-शहर है सभी ।
इन पुराणों ने बर्तन-बला क्या मलौह थी करी,
त्रिज जैनिनी ने पाठ उनको समय ने बहुत करी ॥ ३७२ ॥

हृदयों एसी हो भरी, पर अन्धवि कहना-बला,
पाते गिरार फिर हो, पर पूरा माना जलना ।
तब भरी हो अन्ध हम, पर भरा हम बर्तन-बला;
तुम्हारे बिजने भी बरी नहि, यह त्रिज बर्तन-बला ॥ ३७३ ॥

किं भवति धृतराष्ट्र को इमं भवति मे वै मानसः
नर-भक्ति के प्रति मनुष्य को लग्न हो करोड़ बनने ।
अब आपल-सरवर की करो ! सब वै मनोहर भक्ति से;
जैसे परवर प्रेम का, आपल-सरवर-मन से ॥ ३५ ॥

इस कार्य, आपल, वेद की किन्हीं करो रचना करो;
किन्हीं मनोहर भक्ति में लगे लगे हल करो ।
इस कार्य को भी मनुष्य ३५ में आपल लग्न में विना;
एक आपल, अब जैसा है, सब जगत् कर दोष विना ॥ ३६ ॥

सत्य-सत्य—

एक-एक करो का करें सत्य सब इस देश में;
ऐसा कि लगे सब का सुख के का देश में ।
या देश किन्हीं, या कलुष सब सब हमारे सब का;
सब भक्ति सब करो सुख सब किन्हीं सुख में ॥ ३७ ॥

एक-एक के सत्य-सत्य है ! सब के सब सत्य;
सत्य, सब, सब, सत्यों का है सब सब सत्य ।
सत्य के सब सत्य में सब में सब सत्य;
सत्य न हो सब में सत्य के सब सत्य ॥ ३८ ॥

अब सब सब सत्य सब सत्य सब सत्य है;
किन्हीं सब के सब के किन्हीं सब सत्य है । सब सत्य;
है ! सब सत्य सब सत्य का सब सब सत्य सब सत्य;
सत्य सब, सब सब सब सत्य सब सत्य सब सत्य ॥ ३९ ॥

हैं कोटं मुनसिक मुल रहे, होना जहाँ पर न्याय है;
तुम लार्ड-परिपद^{११०} तब द्यो, यदि हो गया अन्याय है।
इस लार्ड-परिपद-कोटं का हम लान सिद्धता से चुनं !
सम्मेन^{१११} शोकर के लिये हम हैं वहाँ तब द्य चुनं ॥ ३०३ ॥

हैं पाम में पैसा कमान, सब काम का सब उपयोग;
थोड़े रुपये का बहुत के गेहलो, सब उपयोग।
रखें लो सब की हमें हमारी दुन में मिल रही-
अब हम बहुत के लाने चुनं सब काम में रही ॥ ३०४ ॥

इन्हें बनाये काम में हैं सब, कमान, उपयोग, हो
हम देखते हैं सब के दिवस सब के सब हो
सब की दिवस सब में इन्हें सब काम सब
करीब सब के सब सब सब सब के सब ॥ ३०५ ॥

सब सब सब हो वहाँ हैं सब सब सब सब
हैं सब सब सब सब सब सब सब सब सब
सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब
सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब ॥ ३०६ ॥

हैं सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब
सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब
सब सब सब सब सब सब सब सब सब सब
हम सब सब सब सब सब सब सब सब सब ॥ ३०७ ॥

वर्तमान खण्ड

—○:३:○—

मानी रही तू मृत अब तक लेगनी डत्माह भर,
 रोया न तुझमें जायगा अब आज का दिन दाहकर !
 निःशक्त है, निःचेष्ट है, नदि नादियों में रक्त है,
 अब श्वास भी रुकने लगी, अन्तिम हमारा वक्त है !!! ॥ १ ॥

क्या बबुखो ' हमको कहाने का मनुज अधिकार है ?
 दाहर हमें दुष्कार है ' जिह् ' जिह् ' हमें धिक्कार है !
 कटुकर लगेगी आदरों ये शक्य है जो कह रहा,
 पर क्या करूँ ? लाचार है, मेरा हृदय नहीं रह रहा ॥ २ ॥

दयनीय हा ' इस दुश्का का है विनु ' कहा खोर है ?
 इस आर भी हम है नशो, नदि नाथ ' दूती खोर है !
 हमने पिपैनी कृष्ट है हममें बड़ा अधकार है,
 है गोग जेमे पद रहें, जिनका न कृष्ट उरवार है ॥ ३ ॥

हे अज्ञान-नयमा-अज्ञा मध्यक हमें परे हृदय
 ' है नाथ ' हम रतिधर्मिनी के कक्ष में गंगे हृदय !
 ' लक्ष्मण हो, लक्ष्मण हो, रति धर्मि-महेश्वर हो,
 हम टौर पर कल्याण की कला नाथ ' कोई आरा हो ॥ ४ ॥

गुर्जर व भालव देश के हम शाह थे, सरदार थे;
सौराष्ट्र, राजस्थान के आमात्य थे, भूदार थे।
ऐसा पतन तो शत्रु का भी नाथ ! हा ! करना नहीं;
इमसे भली तो मृत्यु है, जिसमें न है लज्जा कहीं ॥ ५ ॥

धर्मन्त होने मात्र से क्या अवपतन रुकता कहीं;
हैं किम नशे में भूतते, हमसे न कम गणिका कहीं।
कितनी हमारे पान में दौलत जमा है देग लूँ;
किस धेए के फिर योग्य हैं हम, धेएि यह भी लेख लूँ ॥ ६ ॥

हम शाह हैं या पोर हैं, हम हैं मनुज या हैं दनुज;
हम नारि हैं या हैं पुरुष ! अत्यंज तथा या हैं अनुज।
हिसक तथा या जैन हैं, या नारि-नर भी हैं नहीं,
क्यों भी हमारे कार्य तो नर-नारि मग खलु हैं नहीं ॥ ७ ॥

अविया

क्यों मूत्र टीले पड़ गये ? क्यों खषगुली से टक गये ?
क्यों मन-वपन-सरविंद पर पाले शिशिर के पड़ गये ?
नित जाति, धन, जन. धर्मका क्यों हास दिन-दिन हो रहा ?
हम येउते फिर क्यों नहीं ? क्या रोग बिनुबर ! हो रहा ? ॥ ८ ॥

हममें विषय वा जोर क्यों ? हममें क्या अविचार क्यों ?
उन्मूल हमको पर रहा यह कल्प मल्लापार क्यों ?
पातक प्रभावे, रंजितों के पोर हम हैं अह क्यों ?
हम कान बन्दने हो लिये हकीकत खण्डे यह क्यों ? ॥ ९ ॥

वेश-भूषा

निज वेशभूषा छोड़ना यह देश का अपमान है;
यज दूसरों की नकल में ही रह गया सम्मान है।
जो जाति सलु ऐसा करे, वह जाति जीवित ही नहीं;
यदि चढ़ गया रंग लाल तो फिर श्वेतपन है ही नहीं । २५॥

इस वृद्ध भारतवर्ष का यह वृद्ध भूषा-वेश है;
चारित्र्य-दर्शन-ज्ञान का यह पून ! पार्थिव वेश है।
हम दूसरों की कर नमल रूप निद्रा ऐना कर रहे—
जन्मे नहीं हम पूर्व थे, हम जन्म रुद हैं धर रहे ॥ २६ ॥

जलवासु, कर्माचार के अनुसार होता भेद है;
प्रतिबुल जिनके घेरा हैं, मनु पतिव के ही देश हैं।
इस घेरा-भूषा में निहित सब रत्न तुम्हें मिल जायेंगे;
साहित्य-बोताल-रत्न का हनको जनक प्रदत्तार्थों ॥ २७ ॥

“जब तक न भारतभर पा अमिन्स पदला जायगा:
तब तक न भारत में हमारा राज्य उमने पायगा।”
ये वाक्य किन्हीं पाद हैं? किन्हीं बहो, कद ये बहो?
मंतव्य के अनुसार जब तक कार्य वे करवें गे! ॥ २५ ॥

हम तोड़ करके पैदा-भूषा देना लखित कर रहे;
 जयमान कर हम पूर्वजों का रक्षा सुन निज कर रहे !
 पूर्वज हमारे स्वर्ग से बाहर बाहर देंगे हमें;
 मैं सत्य कहे हूँ सगे ! परिणाम नहिं सके हमें ॥ २६ ॥

कैसे हुए व्यवहार के ये हुए विनिर्देश हैं
ये हैं शिक्षाओं जगत् के—इन्हीं हुए व्यवहार हैं।
अज्ञानबुद्धी कादि से हन आज तक इनके रहे
कहना पड़ेगा आज जब आदर्शों तक ये रहे ॥ ४२ ॥

श्रीमन्त

श्रीमन्त हो फिर क्या कर्म—पैला न क्या रे! कर लगे;
तुम जोर-हिंसा नो करो, पर कर्म तुमको कह लगे।
हृदय एक जो तो काय में नो है त्रिधा भूतल-त्रिधा;
हृदय तुम्हारे हो गई विरल-गिरी-संवन-त्रिधा ॥ ४३ ॥

श्रीमन्त हो, सत्पद हो, अन्तों क्या वेनान हो;
अवकाश नो तुमको कहीं! जो जगत् का नो धन हो।
इस आज की हा! दुर्दैव के मूल कारण हो तुम्हारे;
तुम योग हो, तुम चोर हो, कर प्रलय-हर्त हो तुम्हारे ॥ ४४ ॥

वेद-धन लगे हुए तुमको न कर्मों लगे हैं;
तुम भुज्य को नो ला लगे यह कर्म-लगा दुष्काय हैं।
अनैतिक कर्म-भरण तुम हा! कर्म-भरणों का कर्म;
धन के सहारे तुम हों, हो तुम न-भरणों हा! कर्मों ॥ ४५ ॥

कैसे हुए व्यवहार के हा! लगे, अन्तों हो तुम्हारे;
अनैतिक-वैदिक प्रलय के नो हय! जगत् हो तुम्हारे।
बहु-प्राणि-पौष्टन नो तुम्हारे हय! कर्मों कर्मों हैं;
ये रो रही विषय-हयों, पर न तुमको कर्म हैं ॥ ४६ ॥

इनके भरोसे बैठना जब तो भयंकर भूल है;
क्या रोप देंगे जड़ हनारि !—आप ये निमल हैं।
देड़ा हनारि पार क्या देही करेंगे ? तब कहो;
हा ! हंत ! आया अंत है !—ऐसा नहीं तुम बुद्ध कहो ॥ ६५ ॥

इनके बर्हा पर नान है श्रीमन्त विन होता नहीं;
घनहोन भाई को यहाँ दुत्कार है, न्योता नहीं।
हन कित वरह से हाथ ! इनसे तुम कहो आशा करें:
दुत्कार लेकर द्वार पर इनके सदा खाया करें ? ॥ ६६ ॥

श्रीमन्त की संतान

यह कौन हैं ? नहीं जानते ? शीतल की संतान हैं;
नहो निरुद्ध, नूर्त हैं, पापाए, पछ, नादान हैं।
सोखा न अक्षर बाप ने, सोखा न ये हैं चाहते;
मर्याद ये भी वंश की तोड़ा नहीं हैं चाहते ॥ ६७ ॥

आलस्य, विषयानंद के ये दुर्व्यस्तन के घान हैं,
बढ़कर पिता से पुत्र नहीं—होता न जग में नाम है।
ये अर्ध निद्रा में पड़े हैं, नाज-मुदरें तै रहे;
बाना पड़ी विमुखा उधर, ठेके इधर ये दे रहे ॥ ६८ ॥

ये दोलने पर पात्र के डरहे बिना नहीं दोलते;
उत्तको किये नृपशाय दिन सीधी कभी नहीं छोड़ते !
हा ! हंत ! नावज पत्रि हैं, हा ! बहन के ये चार हैं;
ये नो विचारें क्या करें ! रतिभाव से लाचार हैं ॥ ६९ ॥



लक्ष्मण लगी जब तुम परम्पर बह सदा तो पेर्य है !
 बो-दण्ड हैं दण्डे तुम्हारे, पात्र सब सम लेख्य है !
 बर-पाद भी इस काल में देते गङ्गा पर बाम है !
 मुँह-पंख भी तो लज्जा बड़े—यह तो बला का बराम है ! ॥ १०५ ॥
 मंदम-जना हन नारियों का यह पवन ! हा ! हंत ! हा !
 बह बर पली थी मोह की जो, तपन में भी है न हा !
 सोमंश की हार भीति से दिनु ! भक्त बरना था नहीं !
 नम्र-व बा डैन-व में मे भव हरना था नहीं ! ॥ १०६ ॥

श्रीकृष्ण-वर्ति

श्रीगुरुदेव, दासि जिनका कथिबि सम्बन्ध से भी मान था;
 जिस भीति कदर मेरि दासि होर का सम्मान था ।
 पर काल दोसे गिर गये थे—एकदा कृष्ण हैं गरी !
 कद दोर-काबर है मनी, कद दामनीजन हैं गरी ॥ १७ ॥
 कनक कद से सुख है, कद दोर विरामक है !
 भरी, भरी, कनक नर कनक सुखे भरी है !
 कद दोर, भरी-कनक से भरी-कनक है 'रह गरी'
 दासि नारी-कनक से कनक का निदान यह गरी ॥ १८ ॥

100

१. कर्मण्येवाङ्गिरसो वक्तव्यं ।
 २. अथर्ववेदः शास्त्रार्थप्रदा ।
 ३. यजुर्वेदः शास्त्रार्थप्रदा ।
 ४. सार्वभौमिकः शास्त्रार्थप्रदा ।
 ५. अथर्ववेदः शास्त्रार्थप्रदा ।

पारचात्य मृदंग सीखकर हम तबलची कहला रहे;
हर वर्ष दी० ए०, एम० ए० बढ़ते हुए हैं जा रहे।
यदि हो न थी० ए०, एम० ए० रक्खी कहाँ हैं नौकरी !
डिगरी बिना हम निर्धनों को है कहाँ पर छोकरी !! ॥ १४५ ॥

प्राचीन प्राकृत, देव भाषा सीखते हैं हम नहीं;
इनके सिखाने की व्यवस्था है न अथ सम्यक् कहों।
पिर देरा के प्रति तुम कहो अनुराग कैसे जम सके ?
दासत्व के कैसे कहो ये भाव डर से उड़ सकें ? ॥ १४६ ॥

जापान, लण्डन, प्रॉंस में शिक्षार्थ हम हैं जा रहे;
भाते हुये दो एक लेडी साथ में ले आ रहे।
शिक्षा-प्रिया के साथ में लेटो-प्रिया भी मिल गई;
हम भैंन इङ्गलिश बन गये दस मुनसफो अब मिल गई ! ॥१४७॥

ओ पा पुके रिखा यहाँ, उनके मुमुक्षा मिल गई !
 हा ! भाग्य उनके खुल गये, यदि रोटियाँ दो मिल गई !
 नीपा किये शिर रात दिन ये खान, मन करते रहे;
 फिर भी बिपारे स्वामियों के मगड़ते जूते रहे ॥ १४८ ॥

आराम में इस प्रथम नम्बर एक टेब्लेट है;
 दो बन्धु आपस में लड़ा ये भर रहे पावंट है।
 ये भी पिपारे बड़ा करें, इसमें न इनके दोष है;
 बैसो इन्हे पिपा निलो, बैसा करें—निर्दोष है ॥ १४६ ॥

मरएन, मरएन के मिथा होनी न सिद्धा है यहाँ !
 यम साम्प्रदायिक सैन्य ही तैयार होता है यहाँ !
 घटराल, द्वाप्राधाम, शुम्भकुल पृष्ठ के मय धाज हैं !
 इनके घदौलम आज रहे ! हा ! हम अकिंचन चीज हैं !! ॥ १४४ ॥

आश्चर्य क्या गतिचार का शिष्टगुण यहाँ संभव मिले !
 हा ! क्यों न ऐसे शुभकुलों में मृष्टि-शिष्टगुण घर मिलें !
 शिष्टक गणो ! तुम धन्य हो; हे संधियो ! तुम धन्य हो !
 निर्दोष दूरी के रहो ! माता-पिता ! तुम धन्य हो ! ॥ १२६ ॥

बालक वहाँ सब मुनं हैं, आता न अहर एक हा !
 यदि अह गये—मर जायेंगे—हंगे न जाने टेक हा !
 इनमें बही पर धेनु-ने भोले मुहें मिला जायेंगे !
 बिदाय देकर एक गल्ल इनको स्तर्निश रजायेंगे ॥ १४५ ॥

निष्ठा-व्रतन आये दिवस हर टौर सुखने जा गे;
 फिर बैठ जाने पेन-ये, ये दीप सुखने जा गे !
 यह जैन सुखद्वय-सादही का संद सा ! ऐसे दुखा ?
 इसकी न गो बोई कही यह आन मति केने दुखा ? ॥ १५८ ॥

ਹੇਠਾਂ ਖੜਾ ਹੁਕਮੇ ਜਾਓ, ਹੋ ਆਖਰੀ ! ਆਖਰੀ ਨਾਹਕ,
 ਹਾਂ ! ਹੋ ਨ ਸਿਲਾਵਾਸ ਹੋ, ਹੋ ਹੋ ਜਾਓ ਬੀਜਾਵਾਸ !
 ਸਦਾ ਸਦਾ ਸਦਾਵਾਸ ਸਦਾ ਵਿਦਿ ਸਦਾ ਹੀ ਨ, ਸਦਾ ਹੋ ਆਖਰੀ
 ਸਦਾ ਸਦਾ ਸਦਾਵਾਸ ਸਦਾ ! ਸਦਾ ਸਦਾ ਸਦਾ ਹੋ ਆਖਰੀ ! ॥ १॥ ॥

ॐ वनंगान गगद ॐ

शिक्षा न दीक्षा है यहाँ, आत्मरचना उन्माद है;
अपमर्श, औद्योगिक हैं, स्वच्छन्दता, अपवाद है !
हिननेक शिक्षण भवन हैं ? जो गर्वपूर्वक कह सकें—
हम धर्म सेवी भक्त इनके देश को हैं नर सकें ॥ १३० ॥

तुमहो हमारे शुद्धकुली में यह नयावन वायगा,
बस जैन आश्रम के मित्र आश्रम न पूजा वायगा !
नहिं प्राप्ति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के ये काम क,
ये उद्दर-योगक हाट हैं अध्यापकों के काम क ॥ १३१ ॥

आश्रमों, वंशिन, योग्य शिक्षक यदि कहीं मिल जायगा,
या रह सकेंगा वह मही, या वह निराशा जायगा ।
कारिग से ये छट कमहो हाव ! ये ' वनवाग्नि '
बहुयत्र तेमे जैन-गणपुत्राण्य में मिल पावेंगे ॥ १३२ ॥

विद्वान्

हम विद्व प्राच्य के नहीं, विद्वान् मीमांसि के नहीं !
विद्वान् आश्रम के नहीं, हम विद्व हिन्दी के नहीं !
हम में न कहे 'गुप्त' से 'उपनिषद्' से हैं कीमते !
कीमते वही से ' वाक्यान्त में हाट चलता मीमांस ॥ १३३ ॥

विद्वान्वादी लोगें दो गेहें जिनका न पूछ जो जान है
आश्रम, स्वच्छन्दता सब जिन चलता हिन्दी का चलन है ।
हिंदू लोग से विद्वान् कुछ हीनाम को हात नहीं लें
के सत्यवादीय हूँ-क-आ में का हात नहीं लें ॥ १३४ ॥

अभिप्राय मेरा यह नहीं—ऐसा न होना चाहिए;
व्याख्यानदाता वस्तु प्रथम आदर्श होना चाहिए।
अभिप्रेत करने की कला चाहे भले भरपूर हो;
वह क्या करेगा हित किसी का, त्याग जिससे दूर हो ॥ १७४ ॥

संगीतज्ञ

संगीत ज्ञाता अब गायक रंझियों-से रह गये !
गायन सभी हा ! ईश के—गायन नदन के बन गये !
सुनकर उन्हें अब भावना विभु-भक्ति की जगती नहीं !
अमाग्नि उठती भड़क है, मन-आग हा ! बुझती नहीं !!! ॥ १७५ ॥

गायक रिसने ईश को अब गान हैं गाते नहीं !
ये भक्ति-भावों को जगाने गान हा ! गाते नहीं !
धोमन्त इनके ईश हैं ! उनको रिसना है इन्हें !
दुर्वांसना मनमथ को उनकी जगाना है इन्हें ! ॥ १७६ ॥

संगीत अब बाजार है, हा ! शक्ति हो तो कर दें !
हैं गायको ! तुम देख ग्राहक गान निरुत्तर को !
संगीत अब हा ! रह गये सामान मोल के !
कविता कबोखर कर रहे अनुत्तर ग्राहक के ! ॥ १७७ ॥

मृत को जिलाने को अहो ! संगीत के अहो !
हा ! गायकों के करुण से जो दृष्टि रखें !
वह फेर में पड़ पड़ के हा ! गायकों के !
नहरित सदाने को इन्होंने जो दृष्टि रखें ! ॥ १७८ ॥

माहिज्य-प्रेम

माहिज्यकी का भावना है। कभी भला होने लगा
हो एक ही उनमें हमारा अब हम माने लगा
वे भी अलग होने कही जायेंगे। मरना मानाया था।
जिनके काहु बाल में है। एक कावित कभी था। ॥ १८० ॥

माहिज्यका आनन्द हमको हम में है। हम गया।
है। नव मृत्तन माहिज्य का अब बाल में है। हम गया
विद्वान काहु हाट पर यदि भाव में आ जायेंगे
दुस्कार के वह भाव में है। यह मृत्तन में है। ॥ १८१ ॥

ऐसे निरक्षर ज्ञानि में विद्वान 'कभी हम व'
माहिज्य-दुर्गेत-मृत्तन पर है। भाव में है। हम
निश्चय हम निश्चय नाम में पुन अहो। भाव में है।
माहिज्य में फिर प्रेम करना किम तरह आता है। ॥ १८२ ॥

माहिज्य जीवननाम है, माहिज्य जीवन था। हम
माहिज्य युग का विषय है, माहिज्य युग का अर्थ है
माहिज्य ही सर्वथा है, माहिज्य महत्त्व इष्ट है
माहिज्य विमर्श है नहीं, जीवन उमीक्षा मिलत है। ॥ १८३ ॥

माहिज्य वैसी बन्तु पर विमर्श कोका हति हो।
तेमा को—यम पर हरे अब बाल की मृत्तन हति हो।
माहिज्य वैसी कोका का कोका अन्तर्गत योग्य है ?
है बन्तु को। अब कष्ट है विमर्श में अन्तर्गत योग्य है ॥ १८४ ॥

प्रतिकार संकट का नहीं करना सिखाने हैं कहीं ।
जब तक न हो पूरा पतन विश्राम इनको है नहीं ।
कवि लेखको ! तुम धन्य हो, तुम कर्म अन्धरा कर रहे ।
अथगुरु सिखा कर फिर हमें गरने का तल—न्युत रहे ॥२००॥

आदर्श नर अरु नारि के जीवन लिखे जाने नहीं ।
आख्यायिकोपन्यास के ये अब विषय होने नहा ।
नहि शौर्य के, नहि धर्म के हमको पढ़ाने पाठ है ।
हा ! आधुनिक साहित्य के तो और ही कुछ छाट ॥ २०१॥

शुचि दान, संयम, शील के, तप ज्ञान, ब्रह्माचार के—
उल्लेख लेखक क्यों कर अब आज वर्माचार के
बुलुटा, कुचाली-सा मजा इनमें न है इनको नहीं ।
आनन्द जो रति-राम में बैराग्य में इनको नहीं ॥ २०२॥

सभायें

इतनी सभायें हैं हमारी, और की जिनकी नहीं
व्यों थे कलह बढ़ने रहे, ये क्यों मजा मुक्तनी रही ।
लड़ना, जहाँ भिड़ना पड़े, अनिराय य होना बहो,
करने सुधार जाति का खोली न हैं जानो कहीं ॥ २०३॥

इतिहास लेकर आप कोई भी सभा का देख ले,
उनके किये में जो यदि अणु मात्र हित भी लेख ले—
'मैं हार निज जीवन गया,' मुएइन हमारा हो गया ।
हा ! गॉट का तो घन गया, घर में बन्धेड़ा हो गया ॥ २०४॥

ज्यों अपमत्त तलवार का तिर लहान सकता वार है;
ठोकर लगे वो तिर लगे पड़ा—बजन जुबार है।
जितनी सभाएँ गुरु रही—सिरोट-गहलबादू हैं;
एन नेग्रहोंनों के लिये ये हाथ ! गहरे खदू हैं ॥ २०५ ॥

बरना सुपाय है नरों, इसके दुपरा हाथ में !
बरने जिमें हो एक के दो, हैं उमों के नाथ में !
प्रत्याप्त होना है जिने, अथवा जिने धन बाहिर
मित्र आर्यो सुविधा सभी उनसे यहाँ जो बाहिर ॥ २०६ ॥

मराडल

घर मराडनों का कान ठी भोजन बरान रह गया;
बर्बर, मेका, धर्म मर जूरे उठना रह गया।
भर जाति में हो संगठन' ये घोर इनके हैं कर्त !
है मराना जिने नरों, इनसे भना बाहिर है कर्त ॥ २०७ ॥

स्योजाति व उत्तकी दुर्दशा

हे नार ! भरीने ! कथिने ! जगभिरने ! शिरोरुते !
होती न जालो यो भरीने ! यह घर दल नजेरता !
पेती बरी लो हो यो ! तुम घर दल की लोड हो,
हम घर दल की दल तुम भेते मरान ने लोड हो ॥ २०८ ॥

तुम में न के लोकर है, तुम में न के के बर्त है !
मूर्त मर मरान तुम लो हो मरान घर दल है !
दुर्दशा, दुर्दशा, दुर्दशा होने न होनी मरान हो !
दुर्दशा, दुर्दशा, दुर्दशा होने न होनी मरान हो ! ॥ २०९ ॥

ॐ यन्मानं गच्छ ३

हा ! आज तुमसे वश की शोभा न बढ़ना है कहीं ।
नर-रत्न तुम अथ व सका—यह शक्ति तुम में है नहीं ।
बध्या सभी तुम ही गड़—यह बात भी तबता नहीं,
सतान की उन्पात में लाजत करी उगा—महा ॥ २० ॥

शोला, मुशीला सुन्दरा मनका न अब तुम रह गई ।
 हा ! माधव्य तो मर गई तुम कफशाये रह गई ।
 उनके भवन का आज तुम प्रसाद हर मरनी नहीं
 दूँटे हुए तुम प्रेम-चरन की हर मरनी नहीं ॥ २०० ॥

लक्ष्मी कहान योग्य गा । अरु हो नग तुम रू गड ।
मन्त्र करन की तुम्हारा शक्ति, मर गल ।
विष-कूट के बोना तुम्हारा या न हो अरु कोन ।
वामा तुम्हें जग कह रहा—वामा गवन हो नाम । ॥ १० ॥

निर्बुद्धिपन अहं नारि-हृद नारी ' तुम्हारा ' ४ । ४ मे
नव येव भक्तिन-सा तुम्हारा ज्ञान नारा ' तेव ये
स्व-दक्षता, धानुष्यता नारी ' न तुमम दास्यता '
मय मीनि मेरी ' मय रङ्ग — कृहद हमे हा दास्यता ' ॥२०॥

तुम शीत भूषण भूषण रह ! नेह भूषण में करो ।
 प्राणुरा अपना होइ कर तुम स्नेह दुजे में करो ।
 विचार तुमहो आग्रह दे, तुम हूँ पानी में मरो !
 हे जल रुई पर मैं अनल, तुम कभी न जल जगमें मरो ॥२१॥

ॐ वर्तमान गुरुदे ॐ

कर्मिणः त्वेन कर्म भवति त्वेन त्वेन त्वेन
अपि त्वेन अतः त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन
मन्मथानि नास्ति ज्ञानेन त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन
त्वम ज्ञानेन त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम ॥ २०० ॥

विदुषो वनानि त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन
इन क पवन म त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन
मुम दी मुना त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन
मुम विदु हा क्व मुन त्वेन त्वेन त्वेन त्वेन ॥ २०१ ॥

व्यापार

कौशल कला व्यापार ही अतः त्वेन त्वेन
मन्मथ मे त्वम क्व त्वम त्वम त्वम त्वम
हा ' देश निधन हो रहा, हा त्वम त्वम त्वम त्वम
मन्मथ पाकर हाथ ' त्वम-मा भाव त्वम त्वम

अथ त्वेन त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम
मन्मथ त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम
व्यापार त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम
व्यापार त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम

व्यापार मुक्ता, त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम
त्वम-त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम
त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम
त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम त्वम ॥ २०४ ॥

121

122

123

124

125

126

127

मुझको तुम्हारी इन नसों में बल नहीं है दीखता;
 क्या अंत-घड़ियाँ आ गई हैं !—इम निरुक्तता दीखता !
 इस मरण से होगी नहीं चिन्ता मुझे किंचित कहीं;
 क्या लाभ है उस देह से, हैं प्राण उसमें जब नहीं ? ॥ २३५ ॥

पर पूर्वजों के नाम पर कालिख कहो क्यों पोत दो ?
 कौत्सुभ-मणी को हाथ ! तुमने पंक में क्यों छोड़ दो ?
 जीना जिसे—मरना उसे, मरना जिसे—जीना उसे;
 अवध्वस्त होकर जो भरे, दुर्मीत हैं मरना उसे ॥ २३६ ॥

कायर तुम्हें बखाल, बखिया आज जग है कह रहा !
कुद बोलने के भी लिये तो तल नहीं है मिल रहा !
तुम में न अथ वह तेज है, नहीं शक्ति है असिधार में !
नारी सतायी जा रही है आपकी गृहद्वार में !! ॥ २३७ ॥

नहिं देश में, नहिं राज्य में कुछ पृथ भी हैं आपको !
 हा ! जिधर देखो मिल रही लानत तुम्हें अननाप की !
 तुम चोर गुराडों के लिये हा ! आज घर की चीज हो !
 वे घुस घरों में मौज करने-मौज को तुम चीज हो ! ॥ २३८ ॥

तुमको अहिंसा-तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है;
इसको सभा कहना तुम्हारा भी हलाहल झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है?
यस आतताई पर चलाना बार—जिन्दाबाद है ॥ २३६ ॥

अथ यो भगवादाह-मा हा ! देश-मेयी है नहीं;
बदला हमारा रक्त है या रक्त हम में है नहीं !
हमको हमारे स्वार्थ का धिन्तन प्रथम बहता बहता;
हम देखते हा ! क्यों नहीं आई हुई घर आपदा !!! ॥ २४५ ॥

हिन्दू हमें बताना न, हम हिन्दू भला कब थे हुये !
होकर निवारी हिन्दू के है हिंदू से बदले हुये !
जिनधर्म तुम हो मानते, इस हेतु भाई ! जैन हो;
हिन्दू तुम्हारी जाति है, तुम हिन्दुओं में जैन हो ॥ २४६ ॥

सप्लीव भावों में अगजित जाति का मन है नहीं;
जस जाति का तो स्वप्न में उद्धार सम्भव है नहीं ।
जो देशवासी बन्धुओं के स्वदन पर रोया नहीं;
तबसे स्वयं ने सच बो मानवपना पाया नहीं ॥ २४७ ॥

बौलियायता

बौलियाय कु-कर्तव्य व्यापक ! वर्तनी में रह गया !
जिस पार ओ सुखे-दुखे कोर हो ने रह गया !
कब कब रह हा ! सेविसे तुम कर रहे हुए मान हो !
जुं जस में बुराई, पर मंज पर तो धन हो ! ॥ २४८ ॥

बहते हुए बौलियाय 'महाजन', सब दाँत कप जादगा,
जस 'महाजी' 'महाजी' पर हो बौल पर रह जादगा ।
मजल दुखती नम कर कर रो-दुख है हो मरे !
दुखेन दुखती हो मरे, पर तुम बिलुपे हो मरे ! ॥ २४९ ॥

जब ब्रह्मत्रत हममें नहीं, व्यायाम भी करते नहीं!
फिर रोग, तत्कर, दुष्ट के क्यों दौंव चल सकते नहीं?
हमसे किसी को भय नहीं, हमको डराते हैं सभी!
धन-माल के अतिरिक्त राना भी चुपड़े हैं कभी !!! ॥ २५५ ॥

ऐसा पत्न हे नाथ ! करना योग्य तुमको था नहीं !
हर भौति से यों निःस्व करना उचित हमको था नहीं !
होगा कहीं पर छोर !—अब तो हे विभो ! वतलाइये ;
अब तो अवक्त हैं भौति सब हम !—आश तो दिखलाइये !!॥२५६॥

धर्म-निष्ठा

ये हाय ! कैसे जैन हैं, घट में न हैं इनके दया !
सिद्धान्त इनके हैं दयामय, हाय ! फिर भी ये हया !
बाहर सदाशय भाव हैं, बाहर दयामय भाव हैं ;
अवसर पड़े तुम देखना भीतर कि कैसे दीव हैं ! ॥२५७॥

इन जैनियों ने भूठ में भी रस कला का भर दिया !
मोठे वचन से कर उसे मिश्रित अधिक रुचिकर किया !
व्यापार, कार्याचार, धर्माचार इनके भूठ हैं !
बाहर छलकता प्रेम है, भीतर हलाहल कूट है ! ॥ २५८ ॥

मार्जार-सा इनका तपोबल पर्व पर ही लेख्य है ;
उपवास, पाँपध, सामयिक व्रतप ब्रतान्वित लेख्य है !
निन्दा, कलह, अपवाद के व्ययसाय झुलते हैं तभी !
एकत्र होकर क्या यहाँ ये काम हैं करते सभी ? ॥ २५६ ॥

पढ़ कर समय के फेर में ये बरतें पैंथ्रिक धन हुये ;
तब बरतें बरतान्तर हुये, ये जाति जात्यन्तर हुये ।
इन भाँति से बर बरतों के लामों विभाजन हो गये !
दितने पिता हम में हुये उपगोत्र लतने हो गये ! ॥ २६५ ॥

हर एक मन के नाम पर हैं; जाति-शुल कितने हुये ?
 कय एक नरके देखिये इगोत्र पुन इतने हुये ।
 बह कार्य, हिन्दू, जैन हैं, श्वेताम्बरी, भीमाल हैं :
 गन्धानुगत, वंशानुगत, गोत्रानुगत के जाल हैं ॥ २३६ ॥

कुल जैन तेह लह होंगे, अधिक होने के नहीं ;
 दम धीम सहन मोघ होंगे—कल्य होने के नहीं ।
 इस कल्य मंगलक जाति का ऐसा भयानक हाल है ।
 हा ! एक बहू भी काल था कल एक बहू भी काल है ॥२६॥

आत्मनः शिरः गेन पदरः साम्प्रदायिकः दन गयेः
 साम्प्रदायिक व्यवहारः, प्रेमालारः तह भी गह गये ।
 इन दिग्गजों से सम्पर्क में रह नही होते प्रत्येक,
 मंकी से दिन दिन हो रहे सब गहन में होने विनय ॥ १६॥

बिन्दने कमर हम पर अदखल लाउ इनके पट रों
होकर महोशर शर ! सब हम गल वागदा कर गों !
तब रह न हमने डेन है, मोहार्द है, बालन्य है,
अब आलमराह पट का बर्हि कोर ना ' आलम है ' ! (१६४)

हे नाथ ! संविष्य यो योगे भव्य होकर आएके ?
मय कृप हमारें आए है, हे नाथ ! तन है आएके ?
कय नाथ ! दुर्दिन देवा के दुभार न हो अथ पावेंगे ?
को नाथ ! अथ तुम ही बर्णो, जिन अथिह तन पावेंगे ॥३१४॥

हे नाथ ! भाग्य होत है ! संज्ञान इसकी दीन है !
धन होत है, मति होत है ! हा ! योग विद्याकीन है !
मदुष्टि देकर नाथ ! अथ हमको मजग कर दीजिये
यह मजगल विद्यायता का नाथ ! अथ हर दीजिये ॥३१५॥

होकर जिना कदा सुख तुम्हें सेवा नदी है पुत्र की ?
अथवा तुम्हें कदा नदी, अथवा ही हो कर मोक्ष की ?
हम है मजगल भव्य होतें आज भा हम भव्य है
कर भीति विद्यायता होकर भा तुम्हें से रह है ॥३१६॥

उर उर बड़ा अविचार जग में, जन्म तुम धारें रहे
निष्ठ भक्तजन के दीन्य को तुम ही सदा हारें रहे,
अथ नाथ ! वन कर योग जग में जन्म धारता दीजिये
पुनित हये इन दीन्य-वन को भव्य अथ कर दीजिये ॥३१७॥

पदमाला भारतवर्ष को स्वाध्याय अथ का जाइये
हम भव्य होकर आएके स्निही भव्य धन्य-दीन्य ?
यदुता दृष्टा मोक्ष तुम्हें दीने विनो मजगल है
दयशील दयनिधि ! हो रहे क्यों जगति हम दयनीय है ॥३१८॥

फिर से दयामय ! मानसों में प्रेम-रस भर जाइये,
हम पणित होकर हो रहे पशु, मनुज फिर कर जाइये ।
गोपाल बनकर नाथ ! कब होगा तुम्हारा अवतरण ?
अथ दुख अधिक नहिं दीजिये, हर लीजिये अथ तम तदस्य ॥३२॥

स्वाधीन भारतवर्ष हो, इसके सभी दुःख नष्ट हो;
यद् सह चुका दे दुःख अति इसको न आगे कष्ट हो ।
हम भी हमारी ओर से करते यहाँ सदुपाय हैं;
पर आपके वल के बिना तो यत्न सब निरुपाय हैं ॥३२॥

कैसे कहूँ भावी यहाँ ? कैसे सजग परिजन कहूँ ?
मैं आप तिमिराभूत हूँ, कैसे तिमिर में पद धरूँ ?
जिस युक्ति से भावी कहूँ, वह युक्ति तो मतलाइये,
देवता मैं तो हूँ नहीं, यह आप ही लिखवाइये ॥३२१॥



सविष्यत् खण्ड

लेखनी

हा ! ना तुमों है लेखनी ! तुमसे, लगने में तुमों !
 कर ध्यान भावों का बनो मे होन संका हो तुमों !
 मित्र न कर कर लेखनी ! तुमसे न कर कर लग रहा ?
 मैं क्या लिखूँ ! मैं क्या लिखूँ ! तुमसे न लिखने कर रहा ॥ १२० ॥

बेजोरी के वरना—

दिनकर दिनकर हो गया ! खनोते कुहकर हो गया !
 वनकर वनकर हो गया ! मृदु वायु मित्र हो गया !
 गये तुमों हो गये ! गये जिने ! रिह हो गये !
 जारा हुआ हो गये ! अब बने नरक हो गये ॥ १२१ ॥

राजा अवारि हो तुमों ! अरुं अरुं हो तुमों !
 योगी कुनोनी हो तुमों ! योगी जिने हो तुमों !
 हर सीत हा ! हर बने हा ! हर बने नरक हो तुमों !
 हो जारा जारे न कर, अब बने नरक हो तुमों ॥ १२२ ॥

अबतर कुअबतर आज है ! हा ! तुमों को तबितर है !
 बैरना, विरवा-योग, नरक, रंग के वनकर है !
 तबितर अवारि, जिने, वन, अबतर है !
 तुमों लगकर हो गये अबतर नरक है ॥ १२३ ॥

ॐ मविष्यन् राण्ड ॐ

अब भी समय है चेतने का यज्ञ अब भी कर सको;
अब भी नसों में शक्ति है, जीवन मरण को कर सको ।
जो हो चुका, सो हो चुका अब ध्यान उसका मत करो;
पापी अनागत के लिए सब मन्त्रणा मिलकर करो ॥१॥

उद्बोधन

मेरे दिगम्बर भाइयो ! श्वेताम्बरो ! मेरी सुनो;
मैं भी सहोदर आपका हूँ, आज तो मेरी सुनो ।
पारस्परिक रणद्वन्द्व को हम रोक दें वस एक दम;
कंधे मिलाकर साथ में आगे बढ़ा दें रे ! कदम ॥२॥

हम पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना ही हमारा धर्म है;
पुरुषार्थ करने पर न हो, वह कौन ऐसा कर्म है ?
होकर मनुज नैराश को नहिं पाश लाना चाहिए;
नर हैं नहीं नारित्व का कुछ भाव होना चाहिए ॥ ३ ॥

हम ही ऋषभ, अरनाथ हैं, मुजबल, भरत, बलराम हैं;
हम ही युधिष्ठिर भीम हैं, घनरथम, अर्जुन, राम हैं ।
कंधे भिड़ाकर हम चले, फिर क्या नही हम कर सके ?
कलिराज के काले शिविर उन्मूल जड़ से कर सके ॥ ४ ॥

पास्परिक इन द्वेष के ये तीर्थ, आगम मूल हैं ;
अमृत गरल है हो रहा !—इसमें हमारी भूल है ।
मति-भ्रष्ट हम सब हो रहे, हम द्वेष में हैं सन रहे !
इस हेतु आगम, तीर्थ भी सब प्राण-नाशक बन रहे !!! ॥ ५ ॥

‘जिन राज वाङ्मय’ नाम की संस्था प्रथम स्थापित करें;
दोनों दलों के ग्रन्थ जिन-साहित्य में परिणित करें।
संमोह, पक्षापक्ष का कोई नहीं बिर काम हो;
ऊपर किसी भी ग्रन्थ के नहि साम्प्रदायिक नाम हो ॥ १० ॥

ये साम्प्रदायिक नाम यों कुछ काल में उड़ जायेंगे ;
संतान भावों को रटकने ये नहीं कुछ पायेंगे।
यों एक दिन जाकर कभी कम एक विध धन, जायगा;
सर्वत्र विशाभ्यास में यह भाव ही लहरायगा ॥ ११ ॥

हैं भिन्न पुस्तक, भिन्न शिक्षक, भिन्न हैं सब श्रेणियों ;
होती न क्या पर स्कूल में हैं एक भाषा, शैलियों ?
विद्यार्थियों में किस तरह होता परस्पर मेल है ?
हो भिन्न भी यदि श्रेणिये, बढ़ता न मन में मेल है ॥ १२ ॥

यदि साम्प्रदायिक मोह हम इन मंदिरों से तोड़ दें;
 सब साम्प्रदायिक स्वत्व को हम तीर्थ में भी छोड़ दें—
 फिर देखिये कृतयुग यही कलियुग अचिर धन जायगा ;
 यह साम्प्रदायिक रोग फिर क्षण मात्र में उड़ जायगा ॥ १३ ॥

यह काम यदि हो जाय तो घस जय-विजय सब होगई !
 भ्रातृत्व हममें आगया, जड़ फूट की घस खो गई !
 कवि, शेष वर्णन भाग्य का फिर क्या हमारे कर सके ?
 हम-न्ता सुखी संसार में फिर कौन धोलो रह सकें ! ॥ १

ॐ भविष्यत् शास्त्र ॐ

हाँ, देखने ऐसा दिव्य दृढ़ यत्न होना चाहिए;
मलिनान तक के भी भिये कटिबद्ध होना चाहिए।
हे नाथ ! दो सद्बुद्धि, जिसमें सद्ब्र ही बद्ध काम हो;
किर मे हमाग जैन-जग अभिराम, शोभाधाम हो ॥ १२ ॥

आओ समायार्ये विचारें आज मिलकर हम सभी;
हम दो नहीं, हम शत नहीं, हैं लक्ष तेरा हम सभी।
इतना बड़ा समुदाय बोलो क्या नहीं बुद्ध कर मर्गे ?
दृढ़ जार्ये तो गिरिगात्र का समन्त धरातल कर सकें ॥ १३ ॥

अनुभर सभी हो वीर के, तुम वीर की संतान हो,
जिसके पिता, गुरु वीर ही, फिर क्यों न बह वनवान हो ?
विनुवीर के अनुयायियों ! लज्जित न पुरुषों को करो;
नर हो, न आत्मा की तजो, होकर न पशु तुम भी मरोगे ॥ १४ ॥

मर के परग हैं, हाथ हैं, अवगैव बुद्ध बन बुद्धि दे,
बुद्ध वो परग आगे बढ़ो, पुरुषार्थ में धन-सिद्धि दे।
पूर्वज दुष्टारे वीर थे, तुम भोग, कायर हो गये।
नर के न तुम अब बन हो, तुम बन पशु के हो गये ॥ १५ ॥

अवसर वदे पूर्वज दुष्टारे देखते दुष्टं करी !
मैं मर करण हूँ मर्गे ! बलिदान के मर्गे नहीं !
मर, मर, वनर, वनवदार मैं बर्गेन दुष्टारे आ गया !
मनुजान्व के अब ग्यात्र मैं मनुजान्व तुमसे आ गया ॥ १६ ॥

देखो न बियवायें परो नें कित तरह हैं सड़ रहों !
सब ठौर तुममें धूम कैसी शिशु प्रलय की बढ़ रही !
खलु भ्रष्ट्रव ही नीम है उत्पान की वैसे अरे !
जब नीम ही दड़ है नहीं, मंजिल नहीं कैसे गिरे ? ॥ २० ॥

आत्म-संवेदन

हे देव ! अनुचित प्रलय के सहते कुसल अब तक रहे !
यों मूल अपनी जाति का हम खोदते अब तक रहे !
हा ! इस अनंगल कार्य से हम त्वाह, आधे३ दिन चुके !
जो रह गये आधे अभी, यम बन्ध उन पर कत चुके !!! ॥ २१ ॥
शिशु पति का कैसे भला पति साठ के से प्रेम हो !
सोचो जब तुम हो भला, उस ठौर कैसे देन हो !
व्यभिचार, अनुचित प्रेम का वित्तार फिर हा ! क्यों न हो !
हा ! अपहरण, अपघात हा ! हा ! भ्रूण-हत्या क्यों न हो !!! ॥ २२ ॥
नारो निरंकुश हो रही, पति भाग्य अपना रो रहे !
विष पति पति को दे रही, पति-देव मूर्छित हो रहे !
आये दिवस ऐसे कथन सुनते ही हैं रहते प्रभो !
जब तक न हो तेरी दया, होगा न कुछ हमसे बिभो !!! ॥ २३ ॥
तुममें सुशिक्षा की कमी का भाव जो होता नहीं—
यों आज हमको देखने यह दुर्दिवस मिलता नहीं !
कारण हमारे पवन के सब हैं निहित इस दोष में !
हे आत्मियो ! मैं कह रहा हूँ सोचकर, नहि रोष मैं !!! ॥ २४ ॥

६ निरंद,

● भविष्यत् खण्ड ●

होता तनिक भी ज्ञान यदि तुममें, न होती यह दशा !
इस हेतु तुम भी मूर्ख हो, नारी तुम्हारी ककरा !
शिखा बिना मतिघर मनुज उल्लू, निशाचर, यज्ञ है !
हम हम कथन की पुष्टि में तर लेख लो—प्रत्यक्ष है !!! ॥ १२ ॥

मिलकर सभी क्या अज्ञता का भार हर सकते नहीं ?
दीपक जला तम सोमका क्या नारा कर सकते नहीं ?
साहस करें—सब हो सके—हमकी असंभव कुछ नहीं;
नखर नखोलिन वीर को क्या था असंभव कुछ कहीं ? ॥ १३ ॥

मेद-भाव-दुःभाव को सब भूल जाना चाहिए,
सब साम्प्रदायिक मोह-माया त्याग देना चाहिए,
कैली हुई दुष्कृष्ट का सिर तोड़ देना चाहिए,
सबको महोदर मानकर मन को मिलाना चाहिए ॥ १४ ॥

करना हमें सब में प्रथम विचार शिखापार का;
होता यही पर जन्म है मरुजान, शिखापार का ।
यमायें, शिवरा, काम का दृग्द्वार शिखापार है;
देव्यादि लोगों के लिये वह एक ही उपचार है ॥ १५ ॥

शिखा बिना ज्ञान संभव हो नहीं सकता सत्ये !
शिखा बिना यदि कम कोई पुरख हो सकता सत्ये !
‘ह’ देव’ कुस्मिन् कम कैसे बढ़ रहे हैं निज मये !
आदर्शना में क्या विमो’ हीन न हम विघ्न नये ? ॥ १६ ॥

क्या दण्डुओ ! अब भी तुन्हें संभेचना नहि आयगी ?
तुन री चुके सर्वस्व, अब घाली घदन पर लायगी !
ह दण्डुओ ! अब तो जगो, अब तो सहा जाता नहीं !
संघोध करना है तुन्हें, मुझने रहा जाता नहीं !!! ॥ ३० ॥

आचार्य-साधु-मुनि

गुरुराज ! तुम संसार के परित्यक्त नाते कर चुके
तुम मोह-माया कानिनी के कल धो भी तब चुके
ऐसी दशा में आपको मंगलस जय कुल है नहीं—
पाठिन्य जिसमें हो तुम्हें ऐसा न फिर कुछ है कहीं ॥ ३१ ॥

जगसे प्रदोजन है नहीं, जग सेन कोई व्यर्थ है;
परिवार, नाते, गौत्र के सन्दर्भ सब निःसर्ग हैं।
निधन घने कोटोश घाटे, भूय कोरे रंक हो;
तुमही किनो से बूझ नहीं—मद खोर से निःशंक हो ॥ ३२ ॥

गुरदेव ! पाहो आप लो सब बुद्ध कभी भी कर सको;
तुमने कभी भी तेल है, तुम तन कभी भी हर सको ।
सनाद हो कोई पुरन, कोई भवा अलखेय हो;
अबधूत हो तुम, क्या करे हर भूत हो, बनरेय हो ? ॥ ३३ ॥

पर साधुजन इस सब न मर्यादा का भङ्ग होयगा,
 जो सेवा सुमन है, नही भङ्ग भी प्रदीप होयगा !
 भुक्त ! खावही भी राग-मत्सर, मोह-माया लग गई !
 पक्षर प्रबंधों में सुशरी साधुका सब इह गई ॥ ३४ ॥

ॐ भविष्यन् शब्द ॐ

जब तब चुके तुम विरयको-मयमान, आदर कुछ नहीं;
कन्सुग्य सभी हो जायें तुमसे-कर सकेगे कुछ नहीं।
रथागी विरागी-साधु हो, अवधूत हो, तप माण हो;
समय अमय कर गको तुम कर्म-प्राणा-प्राण हो ॥ ३५ ॥

कर में तुम्हारा आज्ञा भां गुरुपुत्र ! यह जिन जानि है,
मरुती न हिन इस ओर से उस ओर कोई भीति है !
तुम हो विना, यह है मुना—विच्छेद कैसे पट सकें ?
शाखा भला निज वृक्ष में क्या भिन्न होकर कल सकें ॥ ३६ ॥

जिन जानि ज्ञान प्राण के तुम मर्म हो, तुम धर्म हो,
तुम योग हो, तुम पंग हो तुम ज्ञान हो, तुम कर्म हो,
आमग निगम हो, शास्त्र हो, साहित्य के तुम मूल हो,
आध्यात्म जीवन के लिये जलवायु तुम अनुकूल हो ॥ ३७ ॥

हा ' हत ' ह भगवन ! कैसे आज हा तुम, क्या करूँ ?
मैं बहुत कुछ हूँ कद चुका इमसे अधिक अब क्या करूँ ?
मैं तपसा में कर रहा हूँ प्रार्थना गुरु ! आरसे,—
गुरुदेव ! अवगति आपही अज्ञान है क्या आरसे ? ॥ ३८ ॥

मुनिवर्ग में सर्वत्र हो है गण पाप्मन हो रहे !
इस गण-धर्मी में धर्म के मर तब बुरे हो रहे !
नन, मन, बचन आद कर्म में बहिर्गुरुहारे योग था !
आचार में, व्यवहार में नहिं संग भर भी रोग था ॥ ३९ ॥

जय साम्प्रदायिक द्वेष, मत्सर से तुम्हें भी द्वेष था;
उन सद्वरों में आपके जय क्लेश का नहीं लेश था,
जिन जाति का उत्थान भी संभव तभी था हो सका !
जय गिर गये गुरु ! आप, पतनारंभ इसका हो सका ॥ ४० ॥

जिन धर्म के कल्याण की यदि हैं उरों में कामना,
जिन जाति के उत्थान की यदि हैं उरों में चाहना,
इस बेपन को छोड़कर सम्पत्त्वश्रव तुम दृढ़ करो;
यों साम्प्रदायिक व्याधियों का मूल वच्छेदन करो ॥ ४१ ॥

कंचन तुम्हें नहीं चाहिए, नहीं चाहिए तुमको प्रिया;
फिर किस तरह गुरु ! आपमें यों चल रही है अनुशया ?
आत्माभिस्तापन के लिये संसार तुमने है तजा;
फिर प्रेम कर संसार से क्यों आप पाते हैं सजा ? ॥ ४२ ॥

बदला हुआ है अथ जमाना, काल अथ वह है नहीं;
उस काल की बातें सभी अनुकूल घटती हैं नहीं।
युग-धर्म की समझे विभो ! तुम से यही अनुरोध है;
कर्तव्य क्या है आपका करना प्रयत्न यह शोध है ? ॥ ४३ ॥

इसमें न कोई भूठ है, अथ मोक्ष मिलने का नहीं;
तुम तो भला क्या सिद्ध की भी मोक्ष होने का नहीं !
तिस पर तुम्हें तो राग, माया, कोह से अति प्रेम है;
सावक, समर मिलकर दूँ, अथ तो इसी में है न ॥ ४४ ॥

इस सान्प्रदायिक द्वेष-मत्सर-राग को तुम छोड़ दो;
गरिष्ठ हुये इस धर्म के तुम खण्ड फिर से जोड़ दो ।
अब भी तुम्हारा तेज है—इतने पतित तो हो नहीं;
आमानुलंघन हम करें गुरु!—धृष्ट इतने तो नहीं ॥ ६० ॥

साधित्रये

हं साध्विदो ! स्र्युद्धार का अग्र भार तुम संभाल लो;
जितके लिये तुम थीं चली पति-गोह तजकर-सार लो ।
नारीत्व में शृङ्गार के जो भाव घर कर घुस गये—
उनके छटाड़े तोड़ दो—सद् भाग्य जग के जग गये ॥ ६१ ॥

स्त्रीवर्ग का सिंहावलोकन आज तुम आचख करो;
स्त्रीवर्ग को पूज्ये ! उठाने का अचल प्रत तुम करो ।
आदरा होंगे आप तो—आदरा होंगी नारिये;
यदि बंद रही हैं आप बुद्ध, तो बंद सकेंगी गृहलिये ॥ ६२ ॥

हे साध्वियो ! फिर आप भी तो साधुओं के तुल्य हैं।
इन्से न कुछ है आप कम-इन्से न कुछ कम मूल्य है।
आत्मार्थ साधन के लिये तुमने नज़ा पतिगार को
समझे न कोई चीज़ फिर इस निज विनश्वर देह को ॥ ६३ ॥

नेता

नेता जनो ! यदि धर्म है कुछ आपके इन प्राण में
सर्वत्र यदि तुम दे रहे हो ज्ञानि के कल्याण में
फिर क्यों नहीं जूना नया तुम आज तक कुछ कर मके ?
हनही परस्पर या लड़ाकर बदर अपना भर मके ? ॥ ६४ ॥

नहि ध्यान तुमको जाति का, चिंता नहीं कुछ धर्म की;
 उन्मूल चाहे देश हो,—सोचो नहीं तुम मर्म की ।
 रोते हुए निज बन्धु पर तुमको दया नहि आ रही;
 उनके घरों में शोक है, लीला तुम्हें है भा रही ! ॥ ७५ ॥

रसचार श्रीधर ! आपका अग्र लेखने ही योग्य है !
मंदन तुम्हारे धन्धु का भी अवण करने योग्य है !
श्रीमन्त ! देखो तो तुम्हारा कृत कैसा हो रहा !
दयनीय हालत देखकर यह जन तुम्हारा रो रहा ! ॥ ७६ ॥

अब रह गये कुल आपके ये चार जीवन-सार हैं—
रतिचार है, रसचार है, शृङ्गार है, रसदार है।
सुमको कहाँ अवकाश है 'रतिज्ञान' के तनहार से !—
क्या तार उर के हिल उठेंगे दीन की चित्कार मे ? ॥ ७७ ॥

तुमको पड़ी क्या दीन से ? क्यों दीन का चिन्तन करो !
नानी मरी है आपको जो आप यों मंमूट करो !
रसधार पीछे क्या छिपा है आपको कुछ मान है ?
कृतकाम कौराल हो रहा यमराज का कुछ ध्यान है ? ॥ ७८ ॥

तुम जानि का, तुम देरा का दारिद्र्य चाहो दूर सको;
यद् कारखाने सोलकर तुम निमिष भर में कर सको ।
घनपाशि बुद्ध कमनी नही अब भी। तुम्हारे पास में,
कैसे मकाने सोय पर सोते दृष्टे रत्तिवाम में !! ॥ ७६ ॥



धीमन्त हो, पर वस्तुतः धीमन्तता तुममें नहीं;
लक्षण कहीं भी आपमें धीमन्त के मिलते नहीं !
धीमन्त भामाशाह थे, धीमन्त जगद्गुरु थे;—
वे देश के, निज जाति के थे भक्तवर, घरशाह थे !! ॥ ८० ॥

उन मस्तकों में शक्ति थी, उनको रसों से मुक्ति थी;
निज जाति प्रति, निज धर्म प्रति उनके उरों में भक्ति थी ।
धीमन्त वे भी एक थे, धीमन्त तुम भी एक हो—
कंजूस, मक्खीचूस तुम धीमन्त ! नम्बर एक हो !! ॥ ८१ ॥

नहिं धर्म से कुछ प्रेम है, साहित्य से अनुराग है !
अतिरिक्त रति-रस-रास के किसमें तुम्हारा राग है ?
जब आठ की तुमको प्रिया वय साठ में भी मिल सके;
ऐसे भला रसरस में तुम ही कहो-चल चुल सके ? ॥ ८२ ॥

तुमको कहो क्या जाति का दुर्दैव्य खलता है नहीं ?
पड़ती उधर यदि है दशा, चढ़ती इधर तो है सही ?
हैं आप भी तो जाति के ही स्तंभ अथवा अंश रे !
भूचाल से शायद अवल होते न होंगे ध्वंश रे ! ॥ ८३ ॥

अवहेलना कर जाति की तुम स्वर्ग चढ़ सकते नहीं;
रहना उसी में है तुम्हें, हो भिन्न जी सकते नहीं !
धीमन्त ! चाहो आप तो सम्पन्न भारत कर सको;
आर्थिक समस्या देश की सुन्दर अभी भी कर सको ॥ ८४ ॥

तुमने किया क्या आज तक ? क्या कर रहे तुम हो अभी ?
अधिकांश लेखा दे चुका; अवशिष्ट भी सुनलो अभी ।
पर चेतना से हाथ ! तुम कब तक रहोगे दूर यों ?
मूर्च्छा कहो कब तक तुम्हारे से न होगी दूर यों ? ॥ ८५ ॥

ऐसा तुम्हारे पास है जय, क्या तुम्हें दुःख हो सके ?
नय नय तुम्हारे पाणि-पोंडन सरलता से हो सके !
मगधे-वत्येड़े जाति में दिन-रात तुम पैना रहे—
क्या जाति के हरने नहीं तुम प्राण जीवन वा रहे ? ॥ ५६ ॥

तुम विन कहें हम हैं नहीं, हम विन नहीं कृप्य आप हो;
हम हैं अनुग सष आपके, अमग हमारे आप हो ।
अतिरिक्त हमछो आपके किर कौन जन मुम्वरुंद दे ?
हम,—आपमें शिख प्रेम हो—आनंद ही आनंद है ॥ ८१ ॥

अब थोड़ाकर यह रास-रम कुछ जाति का धितन करो;
मशवूत कर निज जाति को तुम जाति में सुम-धन भरो ।
समझे धरोहर जाति की, निज राष्ट्र की निज कोष को;
कोश, कला, व्यापार में सम्यक् करो देश को ॥ मन ॥

निज देरा की, निज राष्ट्र की, निज धर्म की, निज जाति की.
 श्रीमान् ! पश्चिमे देख लो, है अथ देरा किम भानि की ।—
 दुर्विश, मंछट, शोच है, दारिद्र्य, मित्रा, रोग है !
 ओ-एक हो तो जोड़ दें,—कोटी करोड़ों योग है !! ॥ = ६ H

क्षीमन्त ! केवल आप हो दस एक ऐसे वैद्य हैं;
 ये रोग जिनसे देशके सुन्दर, सरलवर्ण छेद्य हैं।
 अधिकांश रोगों के तथा स्त्रि पितृ भी हो आप हैं;
 क्षीमन्त ! जिम्मेदार इस दिगङ्गी दशा के आप हैं ॥ ६० ॥

सबसे प्रथम श्रीमन्त ! तुम इन, इन्द्रियों को वश करो;
तन, मन, वचन पर योग हो, धन धर्म के अधिकृत करो ।
तन, मन, वचन, धन आपका ही देश भारत के लिये ;
रस, रास, द्योड़ो आज तुम निज जाति-जीवन के लिये ॥ ६१ ॥

अपखर्च को अब रोक दो, अब दोन नूनी हो चुकी !
 धन, धर्म, पत, विश्वास को सब भीति से इति हो चुकी !
 अनेमैत, अनुचित पाणि-पीड़नसे तुम्हें वैराग्य हो,
 वह कर्म—संयम,—शीलनय-फिरसे जगा सदभाग्य हो ॥६२॥

अब, मूर्खता से आपको घनघर ! नहीं अनुराग हो ;
मूर्ख ! तुम्हारे यह लो इतने न तेरा राग हो ।
दल साम्प्रदायिक तोड़कर घरको सुधारो आज तुन;
इस दोन भारत के लिये दो हाथ देदो आज तुन ॥ ६३ ॥

निर्घन

तुम हो पुरुष, पुरुषार्थ के नरदेह से अवतार हो ;
पुरुषार्थ हो प्रारब्ध है, फिर क्यों न दलितोद्धार हो ।
पुरुषार्थ तो करने नहीं, तुम देव जो रोवे रहो ;
क्या दिन भले आजायेंगे दिन में कि जब सोवे रहो ? ॥ ६४ ॥

❖ भविष्यत् सप्तह ❖

ध्यागार कन्या का करो, जिसमें न पड़ता श्रम तुम्हें !
सुद्रा हजारों मिल रही हैं एक कन्या पर तुम्हें !
जिसके सुता है कष्ट में, कर में उसीके शक्ति है ?
उसके सुता है कष्ट में, जिसके करों में शक्ति है ॥ ६५ ॥

विद्या पढ़ो तुम, ज्ञान सीखो, बुद्धि, करसे काम लो ;
करके रहो उस काम को जो काम डर में धाम लो ।
कैसे ब्रह्म ! धनवान तुम देखूँ भला बनते नहीं ;
क्या एक कण के साम्य कण निर्धन कृपक करते नहीं ? ॥ ६६ ॥

तुम तुच्छतर-सी बात पर हो ग्राहकों से बैठने;
तुम एक पाई के लिये पद-श्राण-रण कर बैठने;
ब्यापार धन्धे आपके किर किम तरह से पढ़ सकें?
घाटा न किर कैसे रहे? हम इस तरह जय कर सकें ॥ १७ ॥

धन प्राप्त करने की कला जाने कलाकर भी नहीं ;
पर मूठ में तुमने कला वह समझ दी रखी सही ।
यदि बन्धुओ ! सम्पन्नता अंतिम सुम्हारा श्रेय है ;
अज्ञ, बुद्धि मत्तम सत्य से पुरुषार्थ करना श्रेय है ॥ ६८ ॥

श्री पूज्य

श्रीपूज्य ! यदिपनि आप भी आदर्शना धारण करो ;
मुन्म-देरा-वैभव-जात को पाताल में जाकर धरो ।
हे आगया शैविन्य जो, हमको भगादो पुरुष-वन !
शुचि शीत, संयम, त्यागमय हो आपका तन, मन, बचन ॥८८॥

फिर पूर्ववत् ही आपका सम्मान नित बढ़ने लगे;
शासन तुम्हारा जाति पर निर्वाय फिर चलने लगे।
सम्राट नाने आपको अरु हम प्रजा धन कर रहें;
वहनी रहें नित धर्म-ध्वज, परमार्थ में हम रत रहें ॥६००॥

यति

आस्वाद, रस, रति छोड़ दो, अथ नेह जग में तोड़ दो;
तन, मन, धन पर योग कर अथ अर्थ-संचय छोड़ दो।
हो पठन-पाठन शास्त्र का कर्तव्य निशिदिन आपका;
घोरी धुरंधर धर्म का प्रत्येक हो जन आपका ॥६०१॥

युवक

युवको ! तुम्हारे स्वप्न पर सब जाति का निरि-भार है;
पोषण-भरण, जीवन-मरण युवको ! तुम्हारी लार है।
पौरव दिग्गघो आज तुम, तुम में अज्ञा दुर्दैव है;
तुम देख लो माता तुम्हारी ये रही अवस्था है ॥६०२॥
युवको ! तुम्हारे प्राण में रतिभाव जाग्रत मो गया;
सुकुमार रति सम हो गये तुम, वैष रति का हो गया।
रतिभाव जब तुम में भरा, नरभाव तब रति में भरा;
परिचान भी रुद है कठिन—तुम युवक हो या अल्पवय ॥६०३॥
रस, रान, आनंद, भोग में समग्रद सत्वर तोड़ दो;
इवमव सारे व्यसन बे करके दवा अथ छोड़ दो।
दुर्दैव में तुम भिड़ पड़ो—भूखन मृत्ना कर उठे;
बन राहु या हो मुह पड़े या फिर पलायन कर उठे ॥६०४॥

ॐ भविष्यन् स्मरह ॐ

अवयव तुम्हारे पक गये, यौवन विकच प्रव हो गया ;
तब शक्ति, बल, मन चरमस्तम विकसित तुम्हारा होगया ।
सम-पक्ष में तुम आज तक बल, शक्ति, मन खोते रहे;
शशि-पक्ष में तो क्या कहें, बस तुम सदा खोते रहे !! ॥१०५॥

बस ओर से इस ओर को बल, शक्ति युवको ! मोड़ दो,
आस्थाद इसका भी चखो, कुछ काल को यह छोड़ दो ।
ये दिवस दुखिया जाति के पन मारते फिर जायेंगे;
बम सजल होतें पक के, पकज अचिर खिल जायेंगे ॥१०६॥

संसार-भर की दृष्टि है युवको ! तुम्हारे पर लगी;
तुम हो जगे जिस भाग में, उस भाग में जागृति जगी ।
अब ऐक्यता, मोहार्द का तुम भी यहाँ वर्धित करो;
इसके लिये तन, मन, बचन सर्वत्र तुम अर्पित करो ॥१०७॥

बस आपके उत्थान पर सम्भव सभी उरथान हैं;
होने युवक सर्वत्र ही निज जाति के चिद् प्राण हैं ।
दायित्व कितना आपका, क्या आपने मोचा कभी ?
बाहो, अमी भी सोचलो,—अवकाश है इतना अभी ॥१०८॥

भजने तुम्हारे चरण हैं, हैं काम कर भी कर रहे;
तुम देखने हो आँख से, तुम बात मुँह से कर रहे ।
फिर भी तुम्हारे में मुझे क्यों प्राण नहिं हैं दोखने ?
विक्रान्त-युग में शत्रु कदा चलना नहीं है सीखने ? ॥१०९॥

तुम में न कोई जोश है, उत्साह है, बल-स्मृति है;
बलही हुई बल बाण के नानों बल की मूर्ति है।
या विश्व में सब से अधिक जय वृद्ध नास्तव्य है;
वृद्धत्व में होने किसी के क्या कहीं उत्कर्ष है ? ॥११०॥

अपवाद, निन्दावाद में खोते रहोगे क्या तुम ?
कब तक रहोगे यों प्रिया में हाथ ! रे ! अनुराग तुम ?
पहिलान तुम अब तक मके नहि हाथ ! अपने आपकी;
तुममें अतुल बल, शौर्य है, — दुष्कर न कुछ भी आपकी ॥१११॥

नहि जाति के, नहि धर्म के, नहि देश के तुम काम के;
अपनी प्रिया के काम के, आराम के तुम काम के।
लड़ना अकारण हो वहाँ तुम हो वहाँ पर काम के;
तुम मत्सरों के काम के, — क्या हो किसी के काम के ? ॥११२॥

पुरुषत्व तो होता फलित दम पूर्ण बाँवन-बाल में;
प्रतिभा, कला, बल, शक्ति होते प्रौढ़तन इस काल में।
तुम सब गुणों में प्रौढ़ हो — नहि शायद है शायद तुम्हें ?
आगे बढ़ो यदि दो चरण देरी लगे क्या कुछ तुम्हें ? ॥११३॥

तुमको तुम्हारे काम के अनिरिक्त है अवसर कहीं ?
निन्दा, अनुराग, मूठ, निन्दावाद में अवसर कहीं ?
अधिकांश की मन्दान्नि से बिगड़ी दशा है पेट की !
अवशिष्ट की, मैं क्या करूँ ? बिगड़ी दशा पकेट की ॥११४॥

पञ्चकार

अपवाद:-गुस्सा, भूट-लेवन में तुम्हें येताप्य हो,
विगड़ी बनाने का तुम्हें उपलब्ध अब सौभाग्य हो।
हमको जगाने के लिए तुम युक्तियों से काम लो,
सोये हृत्माँ की गूँथ बना दें जो, न उसका नाम लो ॥१३॥

हैं पत्रकागो । वय में सुन्दर सुधाकर लोग्य हो,
मन देखने ही लिये जटे, पकित न तुम अथ लोग्य हो ।
यदि व्यक्तिकम-अपवाद में तुमको कही करना पड़े,
तबमा निम्नो वय व्यक्तिकम ग्रथा न अम करना पड़े ॥१३॥

कटने हुए कवि, लेखकों को कर पकड़ उन्निहित करो,
है पत्रकारों की कमा, माँ इस तरह समुचित करो।
निरास नया मरदान करो इस जानि मरवांगार का;
मद, मूल उन्निहित करो वदत हुए अनिपार का ॥३३॥

अथ गग, समर, द्वेय क विन-मर वदना द्वेय दो,
इम आर म मम आर दो अथ गगिन वदना लोक दो ।
हर पत्र हो नर मात्र का, हो मास्त्रद्वयिच वद ममे,
वम मास्त्रद्वयिच गथ म नदि पत्र आविन वद ममे ॥१३॥

गित्तग-संस्थाओं के संचालक

संसारही : विनाशजनक मय आपण आहोती ही,
सर्वत्र विनाशकारक का अविनाशक ब्रह्म जगत्तु हो ।
मिथुन मर्कटगुलकांत हो, मय ह्याच प्रविष्टांत हो,
काळावर्ण कटकाळ का मनुष्य मित मनुष्य हो ॥२३॥

तीर्थ

ये तीर्थ पावन धाम हैं, मात्सर्य का क्या काम है ;
द्विज, शूद्र दोनों के लिये ये तीर्थ सम सुखदायक हैं ।
द्विज ! सान्प्रदायिक पंक्त से पंकिल इन्हें तुम मत करो ;
दर्शन निमित्त आये हुए नहि शूद्र को वर्जित करो ॥१७०॥
एकत्र अगणित कोष का करना यहाँ अब व्यर्थ है ;
इनमें करोड़ों हैं जमा, उपयोग क्या ? क्या अर्थ है ?
हे धन्युषो ! तुम कोर्ट में इनके लिये अब मत बढ़ो ;
अब लड़ चुके तुम बहुत हो, आगे कृपा कर मत बढ़ो ॥१७१॥

मन्दिर

परदे पुजारी अब विधर्मी वैतनिक रहने न दो ;
गणना तुम्हारे मंदिरों की अब अधिक बढ़ने न दो ।
यों पतित होकर भक्त-जन है भृत्य-पद पर आगये :
हा ! घन-घटाने भृत्यगण सर्वत्र देखो दायगे ॥१७२॥

विद्या-प्रेम

यों शिक्षणालय खोलने की धुन तुम्हारी योग्य है ;
शिक्षा-प्रणाली पर तुम्हारी ध्यान देने योग्य है ।
शिक्षापरायण शिक्षणालय एक इनमें हैं नहीं,
सब सान्प्रदायिक अह हैं, विद्या-परायण हैं नहीं ॥१७३॥
विद्या-भवन में विष भरा शिक्षण न विद्यादान दो ;
विद्यार्थियों को अब नहीं ऐसा अपावन ज्ञान दो ।
घालक अधूरा ज्ञान मैं घर का न कोई घाट का ;
वह हाट में भी क्या करें, नहि ज्ञान जिसको बाट का ॥१७४॥

परिशिष्ट

[कागज की नैहगाई तथा धुलाई—स्वयं के बंद जाने में टिप्पणियाँ संकेत में दी जाती हैं, बना करें। स्वर्णय श्रीनंद विजयभूषेन्द्रसूरिवर जी के मुनिनन्द मुनिराज श्री कल्याणविजयजी के सौजन्य में प्राप्त ग्रन्थोंके आधार पर टिप्पणियाँ दी गई हैं। लेखक इन मुनिराज का अन्तर जानाती है।]

१—गिरिपञ्च हिमालय भूगोल-प्रसिद्ध पर्वत है और विरव में नव पर्वतों में उच्चतम पर्वत है।

२—भगवान् ऋषभदेव—ये इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न नामि कुलकर के पुत्र थे। ये जैन धर्म के इस अवतारपिरी कालमें आदि प्रवर्तक हुये हैं। अग्नि (शास्त्रात्र), नग्नि (लेखन) और कग्नि (कृषी) ये तीनों कर्म सर्वप्रथम मानव-समाज में प्रचलित करने वाले भगवान् ऋषभ ही हैं। वेदों की रचना भी आप ही के काल में हुई। ७२ नर-कला, ६४ नारी-कला तथा १४ विद्याओं की रचना भी आप ही ने की। भगवान् ऋषभ देव की आयु ८४ लाख पूर्व की थी। राजोपाधि सर्व प्रथम जगत में आपने ही धारण की थी।

३—विमलवाहन—ये प्रायः श्वेतगज की सवारी करते थे इस लिये इनका नाम विमलवाहन विभूत हो गया। ये प्रथम

क्र.	विवरण	प्रकार	मूल्य	प्रति भाग	प्रति	प्रति भाग
१	एक एक एक एक	एक एक	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
२	दो दो दो दो	दो दो	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
३	तीन तीन तीन तीन	तीन तीन	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
४	चार चार चार चार	चार चार	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
५	पांच पांच पांच पांच	पांच पांच	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
६	छह छह छह छह	छह छह	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
७	सात सात सात सात	सात सात	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
८	आठ आठ आठ आठ	आठ आठ	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
९	नौ नौ नौ नौ	नौ नौ	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१०	दस दस दस दस	दस दस	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
११	ग्यारह ग्यारह ग्यारह ग्यारह	ग्यारह ग्यारह	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१२	बारह बारह बारह बारह	बारह बारह	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१३	तेरह तेरह तेरह तेरह	तेरह तेरह	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१४	चोदस चोदस चोदस चोदस	चोदस चोदस	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१५	पंद्रह पंद्रह पंद्रह पंद्रह	पंद्रह पंद्रह	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१६	सोलह सोलह सोलह सोलह	सोलह सोलह	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१७	अध्यापक अध्यापक अध्यापक अध्यापक	अध्यापक अध्यापक	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१८	अध्यापिका अध्यापिका अध्यापिका अध्यापिका	अध्यापिका अध्यापिका	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
१९	अध्यापक अध्यापिका अध्यापक अध्यापिका	अध्यापक अध्यापिका	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००
२०	अध्यापिका अध्यापक अध्यापिका अध्यापक	अध्यापिका अध्यापक	२०००००	२०००००	२०००००	२०००००

तीर्थकर

सं०	नाम	पिता	माता	नगर	लंकृत	शरीर वर्ण	शरीर मान	आयु
१	प्रापभद्रेश	नाभिराजा	नरुंदेवा	प्रायोध्या	पुष्प	स्वर्ण	५०० धनुष	८४ वर्ष पूर्ण
२	प्राजितनाथ	जितराष्ट्र	विजया	"	हस्ति	"	५५० "	७२ "
३	संभवनाथ	जितारी	संनाराणी	प्रायस्ति	शरव	"	५०० "	६० "
४	प्राभिनंदन	संवर राजा	सिद्धार्थ	प्रायोध्या	कपि	"	३५० "	५० "
५	सुमतिनाथ	मंथपूर	सुमंगला	"	कैच	"	३०० "	४० "
६	पद्मन	श्रीधर	सुसीमा	कौशाची	पद्म	रक्त	२५० "	३० "
७	सुपार्थनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी	कान्ही	स्वस्तिक	स्वर्ण	२०० "	६० "
८	पद्मप्रभ	महासेन	लक्ष्मणा	पद्मपुरी	पद्म	रक्त	१५० "	१० "
९	सुविधिनाथ	सुमीव	रागा	काकंदी	मकर	"	१०० "	२ "
१०	श्रीवज्रनाथ	हृदय	नन्दा	नरिलपुर	श्रीवास	स्वर्ण	६० "	१ "
११	शैवालनाथ	विष्णुपुत्र	पिप्पलावा	सिंहपुर	गणपद	"	८० "	८४ वर्ष पूर्ण

क्र.	वस्तु	मात्रा	मूल्य	कुल मूल्य
१	कपड़ा	१०	१००	१०००
२	कपड़ा	२०	२००	२०००
३	कपड़ा	३०	३००	३०००
४	कपड़ा	४०	४००	४०००
५	कपड़ा	५०	५००	५०००
६	कपड़ा	६०	६००	६०००
७	कपड़ा	७०	७००	७०००
८	कपड़ा	८०	८००	८०००
९	कपड़ा	९०	९००	९०००
१०	कपड़ा	१००	१०००	१००००

आदना है।" राजा ने मुन्ना मंगवाई और गुफा और कगोत को
रक्षणा और लक्ष और अगती देह दे आगित काटकर रक्षणा
पुष्पु कगोत के मार के बागदर वह न हो सका। राजा ने जिस
साम काटकर रक्षणा लेकिन जिस भी कगोत के गोल के साम त हो
सका, वह राजा सेवक स्वर्ग मुन्ना पर चढ़ गये। कगोत एवं
कात्र शोनी प्रकट होकर कहने लगे, 'रात्रम्। इस देव है, और
आपक धर्म की परीक्षा होने आये थे। सुमा कीजिये।' राजा की
इह पुर्वकम् हा गई और वे शोनी देव अपने-अपने स्थान को
गये, दिनु ममात्र में वह कथा राजा जिवि के नाम से
प्रसिद्ध है।

[illegible]

11-40-84 12:04

6-10 18 22 27 30

६३—कपल्लव—गङ्गा गङ्गाय वि गङ्गा सुविधा क कपल्लव क
कपल्लव क कपल्लव क क क क कपल्लव क कपल्लव
कपल्लव क कपल्लव क

४६-अथ-द्वितीयः अङ्कः ॥ १ ॥ अङ्कः ॥ १ ॥ अङ्कः ॥ १ ॥

दिया। 'लपसर्गों' का नाम मात्र गिनाने के लिये भी एक दस्ता
बागवत चाहिए। देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग १० वॉ।

४६—भगवान् पार्वनाथ—तक जो हमारे नरें वें तीर्थंकर हैं जैन-इतिहास भरलता से उपलब्ध हैं। फटिनतया अथ अथ ऐति-
हासिक शोध भगवान् नेमिनाथ तक जाती हैं। इसके पूर्व का समस्त इतिहास अन्धकार में है। संभव है आगे जाकर पता चले जा सके।

४७—गजसुकुमार—ये ६ वें वामुदेय ओष्ठ्य के छोटे भाई थे। इनके स्वसुर सोमराम ने इनके शिर पर जप कि ये ध्यानस्थ पादोत्तम में स्मरण ऐश में खड़े थे, मलग बंगारे रख दिये थे। फिर ओष्ठ्य ध्यानस्थ रहे और अन्न में अन्नवृत्त-बेवली होकर गगन मोह-वद पो प्राप्त हुए।

१२—नेत्रावेन्दुभिः—ये परम दयालु थे। आपने अपने आँखों से हमें सुनाया कि दुग्धने आपके जीवन पर्यायी प्रत्यक्ष प्रमाण की थी।

१५—कविता सुन—ये वही ममता भावी है। एक नविक
ने कहाही ममता ही जग-भरता है। वैदिकिया था जब कि कान
नव में वही हुए ममता पर पर मो है। ममता कानने हम पर
नविक ही कानने नवी किये। कान में काननव-वैदिकी ही
कान मोत मने।

[illegible]

२७—समुद्राचार्य—ये प्रवर तेजवन्त आचार्य थे। आपने अनेक बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में निर्मेज किया था। आपने प्रवर बौद्ध विद्वान् बहुकर को शास्त्रार्थ में हराया था। मृगुरुच्छ नगर में अब भी एक गौतम बुद्ध की अर्धनमित मूर्ति है। कहते हैं कि इन बुद्ध मूर्ति ने समुद्राचार्य के आदेश पर उन्हें बंदन किया था।

२८—स्वयंभूमूर्ति—ये क्षुद्रकान्त के धारी महा तेजस्वी आचार्य थे। आपने लगभग हिमको को सहिष्णु बनाया था। मगधन के अन्तरगत बना हुआ शोमलपुर एक समस्त परम-हिमन था। गाव भी ने ही इस मगधन नगर को तथा वहाँ के राजा जयमेन को जैन बनाया था। शोमल (एक जैन जाति) शोमल-पुर में ही जैन बने थे। मागध राजा को भी आपने ही जैन बनाया था, जो अब जैन दोखाव जाति के नाम से विद्वान्त हैं।

२९—रघुनाथमूर्ति—आपने मगध राज्य अन्तर्गत काई हरे शोमल नगरों के निवासियों को जिनका पूर्व नाम जयमेनपुर था जैन बनाया था, जहाँ से शोमल नगरों के निवासी शोमल-पुर बहलाने हैं।

३०—मणिमण्डप—ये वल्लभाजी के भाग्य थे, राज मगधों के आचार्य थे। इनके आगे हुए तेजवर जयवर्मा मदी, मर भी इनके जिने मगध बने थे।

३१—वज्रमेघमण्डप—ये राज तेजस्वी आचार्य थे। इनके मगध में काई वर्ष का अरुण्डत हुआ था। आपने शोमल नगर के निवासियों को जिनका पूर्व नाम जयमेनपुर था

此項工程已於
1954年10月
10日

李 子 和 書

此項工程已於1954年10月10日
10日

此項工程已於1954年10月10日
10日

此項工程已於1954年10月10日
10日

此項工程已於1954年10月10日
10日

此項工程已於1954年10月10日
10日

此項工程已於1954年10月10日
10日

‘आध्यात्मिकलुपति’ नाम का प्रत्यय लिया है। ‘दशवैकलिक-
सूत्र’ पर भी टीका लिखी है।

११—दोषाचार्य—इन्होंने ‘ओषनिर्मुक्ति’ पर टीका लिखी है।

१२—नलवादी आचार्य—इन्होंने पद्म पत्रि (जैन रामायण)
शीर्षक द्वारा श्लोको में लिखा है। ये विद्वान् पशुपति राजा में
विद्यमान थे। अनुवचन में आपने बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ में
पराजय किया था अतएव आपको ‘वादी’ पद दिया गया।

१३—मृगधर्य—ये महान् पण्डित थे। इन्होंने प्रसिद्ध
भोजनशास्त्र की विद्वत्कारणों को भी दर्शनशास्त्रार्थ में पराजय
दिया था।

१४—दीर्घाचार्य—ये भी प्रवर शास्त्र पारंगत थे। इन्होंने
अनेकिल्लुर में विद्यमान श्री राजसभा में बौद्धाचार्यों को शास्त्रार्थ
में पराजय दिया था।

१५—जिनेन्द्राचार्य—ये महान् विद्वान् थे। ये ११ वीं शती
में हुए हैं। इन्होंने पण्डितोपदेश, धारपत्रि, लोकादली-
कण, दशमस्तोत्र, कर्णवर्णन आदि विद्वत्-
कृत हैं।

१६—१७ दशक आचार्य—ये महान् पण्डित शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने
लोकादलीकण, दशमस्तोत्र, कर्णवर्णन, लोकादलीकण, लोकादलीकण
आदि का अंगुली १० वीं शती में इन्होंने कट का एक कर्ण लोकादलीकण
दशमस्तोत्र लोकादलीकण आदि कृत हैं।

१८—दशक आचार्य—ये महान् पण्डित शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने
लोकादलीकण, दशमस्तोत्र, कर्णवर्णन, लोकादलीकण, लोकादलीकण
आदि का अंगुली १० वीं शती में इन्होंने कट का एक कर्ण लोकादलीकण
दशमस्तोत्र लोकादलीकण आदि कृत हैं।

१९—दशक आचार्य—दशक आचार्य आदि १० वीं शती में

● परिशिष्ट ●

● जैन ग्रन्थी ●

ससके पर आहार ग्रहण करते हुए कहा कि अब कल से मुक्त होगा और ऐसा ही हुआ ।

६२—रत्नरोत्तरमूर्ति—प्रथम जैन विद्वान् थे । आपने 'मो-पाल-चरित्र' तथा 'गुणस्थानककमारोह' नामक अनेक उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं । बादशाह कियोज मुगलक आपका बड़ा सम्मान करता था ।

६३—चन्द्रसूरि—ये आचार्य मागधी भाषा के प्रगाढ़ परिचित थे । इन्होंने मागधी में 'संमहणी नाम का ग्रन्थ लिखा है । आपने 'निर्यावली सूत्र' पर भी टीका लिखी है । ये आचार्य तेरहवीं शताब्दी में हुए हैं ।

६४—प्रसन्नचन्द्र राजर्षि—ये महान् आचार्य हो चुके हैं । इन्होंने अपना राज्य अपने छोटे भाई को देकर दीक्षा ली थी ।

६५-६६—कालिकाचार्य व राजा गर्दभिल—राजा गर्दभिल उज्जैन का राजा और प्रसिद्ध विक्रमादित्य का पिता था । इसने सरस्वती नाम की साध्वी को जो अति सुन्दर थी और तृतीय कालिकाचार्य की बहन थी पकड़ कर अंतःपुर में डाल दी । निश्चय कालिकाचार्य ने आचार्य वेप को परित्यक्त कर अनार्य देश में से सेना समूहीत की । राजा को परास्त कर साध्वी के शील की रक्षा की और उसे राजा के चंगुल से मुक्त की ।

६७—इन्द्राचार्य—इन आचार्य ने 'योगविधि' नामक अद्भुत ग्रन्थ लिखा है ।

६८—तिलकाचार्य—ये महान् प्रसिद्ध आचार्य थे । इन्होंने

समकालीन है। आपने भी राजा भोज के विद्वदगणों को निग्रम पर दिया था। अतएव राजा भोज ने आपको 'वादी वेताल' की एसाधि प्रदान की थी।

८२—रूपभट्टाचार्य—इन्होंने मथुरा के राजा आम को जैन-धर्मी बनाया था। आम राजा दुराचारी और स्त्रीलंपट था। आम राजा ने ज्योति जैनधर्म स्वीकार किया कि सारी मथुरा नगरी जो शैव थी जैन धर्मानुयायी बन गई।

८३—जिनदत्तसूरि—ये खरतरगच्छ के महा प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। आज भी स्थान २ पर आपके नाम में दादा-शायें मौजूद हैं। आपने जैनधर्म का अतिशय विम्वार-प्रचार किया था। ये आचार्य १२ वीं शताब्दी में हुए हैं।

८४—जिनकुशलसूरि—ये खरतरगच्छ के आचार्य थे। आपने 'चैत्यवर्द्धनकुशलकृति' नाम का ग्रन्थ लिखा है।

८५—जिनप्रभसूरि—ये प्रगाढ़ विद्वान् थे। इनका ऐसा निदम था कि प्रत्येक दिन कोई नव स्तोत्र, सूत्र एवं कुर हो अष्ट-उत्त महत्त्व परना। इन्होंने 'द्वयाक्षय महाकाव्य' लिखा है। इनका काल १४ वीं शताब्दी है।

८६—एन्दुहीतिमूरि—इन्होंने 'मारन्दनचरणरत्न' पर 'एन्दुहीति' नाम का टीका लिखा है।

८७—प्रभाचन्द्रसूरि—ये आचार्य १४ वीं शताब्दी में हुए हैं। इन्होंने 'प्रभाविषय परिशिष्ट' नाम का जैनहासिक ग्रन्थ लिखा है।

८८—आद्य आशाधर—ये मरहट्ट के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन्होंने 'बुद्धलघानन्दवारिका' नामक अष्टाङ्कुर का ग्रन्थ लिखा है।

सनकातीन है। आपने भी राजा भोज के विद्वदगणों को निष्प्रभ कर दिया था। अतएव राजा भोज ने आपको 'वादी वेताल' की उपाधि प्रदान की थी।

२२—रत्नमहाचार्य—इन्होंने मथुरा के राजा आन को जैनधर्मापनाया था। आन राजा दुराचारी और स्त्रीलंपट था। आन राजा ने ज्योहि जैनधर्म स्वीकार किया कि सारी मथुरा नगरी जो शैव थी जैन धर्मानुयायी बन गई।

२३—जिनदत्तसूरि—ये सरतरगच्छ के महा प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। आज भी स्थान २ पर आपके नाम से दादा-बाड़िये मौजूद हैं। आपने जैनधर्म का अतिशय विस्तार-प्रचार किया था। ये आचार्य १२ वीं शती में हुए हैं।

२४—जिनकुरालसूरि—ये सरतरगच्छ के आचार्य थे। आपने 'चैत्यवंदनकुलकृत्ति' नाम का ग्रंथ लिखा है।

२५—जिनप्रभसूरि—ये प्रगाढ़ विद्वान् थे। इनका ऐता नियम था कि प्रत्येक दिन कोई नव स्तोत्र, सूत्र रच कर ही अन्न-जल ग्रहण करना। इन्होंने 'द्विचास्य महाकाव्य' लिखा है। इनका काल १४ वीं शती है।

२६—चन्द्रकीर्तिसूरि—इन्होंने 'सारस्वतव्याकरण' पर 'चन्द्रकीर्ति' नाम की टीका लिखी है।

२७—प्रभावन्द्रसूरि—ये आचार्य १४ वीं शती में हुये हैं। इन्होंने 'प्रभाविक चरित्र' नामका ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है।

२८—आर्य आशाधर—ये संस्कृत के प्रख्यात पण्डित थे। इन्होंने 'कुवलयानन्दकारिका' नामक अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा है।

अद्विक बिक गई और अपने पति को शरण-मुक्त किया। देखो
'हरिवन्द्यराम'।

१५—तारा—यह राजकुमार बनक की पहिन थी। यह बचपन में ही अपने परिवार से बिछुड़ गई थी। इनने अनेक संकट सहन किये थे।

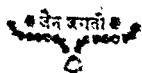
१६—बुसुमवाला—यह भी नए सर्वाधी। इसने अपने
सौल को रक्षा करने के लिये बड़े-बड़े संकटों को सहन किया था।

१७—सुभद्रा—अपने शील के प्रभाव में इसने चलनी में
हरों में से पानी निकाल कर बढ़ते हुए जल-प्रवाह को छिटक कर
राल किया था। यह संपन्नगरी—निकामी सेंटिमुट मुद्दाल को
रखी थी।

१८—शिवा—एतदप्रयेत की शाली और वेदक राष्ट्रपति की पुत्री थी। इसने नगरी में लगती हुई प्रबल अग्नि को अपने शक्ति के प्रभाव से शान्त की थी।

६६—बालावती—राज नृपति की बाली थी। एक समय राजा ने मिथरा राजा से बालावती के दोनो हाथ बटका दिये। लेकिन बादमा बाली हाथ के प्रभाव से बालावती के दोनो हाथ पूरवत हो गये।

१००—आमुनि—इसका अर्थ नम्र वदनाकार है। यह
 पत्रा हरिवाहन की पुत्री थी। आश्विन मङ्गलारिता थी और
 भागवान् महावीर की सुप्रीति मित्रता थी। भगवान् का वस्त्र
 अम्बिकर वस्त्रवस्त्रा के ही साथ पूर्ण हुआ था। इसने जीवन् मये
 मित्रने सकल सत्त्व विदे वदने द्वारा सत्त्व ही विनीत। अन्त मदी



न पत्नी देखकर वह जिहा खींच कर पंथगतिकी को प्राप्त हुए थे।

१००—मदनरेखा—यह राजा युगसाहू की पतिपरायणा गायी थी। युगसाहू को इसके देवर मलयोरम ने मार डाला था और इसे हमको प्रिया बनने के लिये अनेक प्रलोभन व संकट दिये थे। अन्त में यह प्रसाद छोड़कर भाग निकली थी और दोहा प्रहस्य कर परित्र पालने लगी थी।

१०१—नर्मदा—यह महेश्वरदास की पतिप्रता गी थी। इसने कालार्थ सुश्रुति के पास दोहा प्रहस्य की थी।

१०२—सुजमा—यह परमात्मा महिला थी। इसके बर्तमान पुत्रों का मरण एक साथ हुआ था, लेकिन यह उनके मरण पर दुःखि थी शोकानुर गरी हुई थी। और अपने पति की धर्म का प्रतिरोध देकर इसे इसने शोक-मग्न में डूबने में डराया। अन्त में इसने भी दोहा लेकर परित्र प्रवृत्ति का पालन किया।

१०३—सुलभा—यह शोकप्रद वामुदेव की पतिपरायणा गायी थी। इसके शोक की परीक्षा देखी ने अनेक प्रकार से की, लेकिन यह परीक्षा में सदा सती रहती। अन्त में इसने भी दोहा लेकर परित्र-धर्म का पालन किया।

१०४—अञ्जना—यह हनुमान की दास्य और वनप्रहारा की परित्रग गायी थी। अञ्जना की दया पर अनेक शोक है।

१०५—अम्बिका—यह अम्बिकादेव की पुत्री परमात्मा की पतिपरायणा गायी और वामुदेव की गायी थी। इसने भी दोहा लेकर परित्र-धर्म प्रहस्य किया था।

‘सत्य’ और ‘अहिंसा’ में ही किये हैं और समस्त संसार को भी आपका यही उपदेश है। संसार भले प्रकार जानता है कि जैन धर्म के भी मुख्य सिद्धान्त सत्य और अहिंसा ही हैं।

१२१—‘यह निर्विवाद सिद्ध है कि बौद्धधर्म के प्रवर्तक गौतमबुद्ध से पहिले जैनों के तेवीस तीर्थंकर हो चुके हैं।’ यह प्रसिद्ध विद्वान् डेविड साहब ने एनमाईक्लोपीडिया ब्याहा-ल्यूम २६ में लिखा है। ऐसा ही अनेक यूरोपीय विद्वानों का मत है। अब तो हमारे देशभाई भी ऐसा मानने लगे हैं।

१२२—देखो ‘जैन जातिमहोदय’ प्रथम प्रकरण (मुनि ज्ञानसुन्दरजी बिलिखित)

(अ) यजुर्वेद—ॐ नमोऽर्हन्तो भूषमो।

(य) यजुर्वेद—ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा।

(अध्याय २६)

(स) श्री महाश्वपुराण—

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं. मरुदेव्यां मनोहरम्।

शुभं क्षत्रियधौष्ठ. सर्वज्ञस्यपूर्वकम्॥

(६) मनुस्मृति—कुलादि बीजं सर्वेषां प्रथमो विमलनाहन।

चक्षुष्मारिष यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसनेजित॥

(६)—महाभारत में भीष्मपुत्र भगवान् क्या कहते हैं—

‘आरोहस्व रये पार्थ गांढीवंश कदे गुह।

निर्जिता मेदिनी मन्ये निग्रन्या यादिः’

१२३.....‘परन्तु इस धोर हिंसा

के जाने का अर्थ जैनधर्म ही के हिंसे में है।’

मुगल सम्राट् जहांगीर के समय में भी हो चुके हैं। ये भी बड़े विद्वान् आचार्य थे और इन्हें 'वादी' की उपाधि थी।

१४७—हेमचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध आचार्य अभयदेव सूरिजी के शिष्य थे। ये १२ वीं सदी में हुए हैं। इन्हें 'मल्लधारी' की उपाधि राजा सिद्धसेन ने अर्पण की थी। इन्होंने जीव-समास, भयभायना, शतकवृत्ति, उपदेशमालावृत्ति आदि अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं।

१४८—हरिभद्रसूरि—ये आचार्य भी संस्कृत के अजोड़ विद्वान् थे। ये विग्रह की छठों शती में हो गये हैं। इन्होंने कुल मिलाकर १४४४ ग्रन्थ लिखे हैं। जंबूद्वीप-संग्रहणी, दक्षयैकालिक-वृत्ति, शान्तिचिन्त्रिका, सप्तवृत्तलिका योगदृष्टिसमुच्चय, पंचसूत्र-वृत्ति इत्यादि।

एक इसी नाम के आचार्य १२ वीं शताब्दि में भी हो गये हैं। ये भी बड़े शक्तिधर आचार्य थे। इन्हें लोग कलिकालगोतन कहते हैं। इन्होंने भी 'तत्त्वप्रदीप' अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

१४९—सीपाल—यह सौराष्ट्रपति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। ये महाकवि थे और राजा इनका बड़ा संमान करता था।

१५०—परिमल—ये बड़े भावुक कवि और विद्वान् थे।

१५१—धनञ्जय—इस नाम के एक महाकवि विग्रह की ६ वीं शती में हो गये हैं। इन्हें समस्त संस्कृत-साहित्यिक-संसार जानता है। इनके रचनाएं हुए अनेक ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं। 'द्विसंधानमहाकाव्य' लिखते मारेब श्लोक में दो-दो बदाबो का

मुगल सम्राट् जहांगीर के समय में भी हो चुके हैं। ये भी बड़े विद्वान् आचार्य थे और इन्हें 'वादो' की उपाधि थी।

१४७—हेमचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध आचार्य अभयदेव सूरिजी के शिष्य थे। ये १२ वीं सदी में हुए हैं। इन्हें 'मल्लघारी' की उपाधि राजा सिद्धसेन ने अर्पण की थी। इन्होंने 'जीव-समाप्त, भवभावना, शतकपृत्ति, उपदेशमालाकृत्ति' आदि अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं।

१४=हरिभद्रसूरि—ये आचार्य भी संस्कृत के अजोड़ विद्वान थे। ये विग्रह की छठी शता में हो गये हैं। इन्होंने कुल मिलाकर १४४४ ग्रन्थ लिखे हैं। जंबूद्वीप-संग्रहणी, दक्षवैकालिक-पृथ्वी, मानसिद्धिका, लघुकुण्डलिका योगदृष्टिमुच्चय, पंचसूत्र-पृथ्वी इत्यादि।

एक इत्ती नाम के आचार्य १२ वीं शताब्दि में भी हो गये हैं। ये भी बड़े शक्तिधर आचार्य थे। इन्हें लोग कलिकालगोतम कहते हैं। इन्होंने भी 'तत्त्वप्रशोधदि' अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

१४६—क्षोपाल—यह सौगण्ड्यपति राजा सिद्धसेन के समय में हुए हैं। ये महाकवि थे और राजा इनका बड़ा संनान करता था।

१५०—परिमल—ये दूढ़े भावुक बवि और विद्वान थे ।

१५१—धनंजय—इस नाम के एक महारथि विक्रम की ४
वीं शती में हो गये हैं। इन्हें समस्त संस्कृत-साहित्यिक-संसार
जानाता हैं। इनके बनाये हुए धनेश ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं।
'द्विसंधानमहाकाव्य' विमर्श प्रदेक श्लोक में दो-दो ब्याघ्रों का

● परिशिष्ट ●

अर्थ निष्कलता है तथा 'धर्मत्रयनाममात्रा' आगके प्रमिष्ट ग्रंथ हैं।

१२२—यज्ञरामी—इनकी स्मरण-शक्ति लक्ष्मी प्रवर्धनी।
आठ वर्ष की आयु तक इन्होंने अवलगात्र से ११ खंभी का
सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। पर्याप्त आचार्य मिहिरि के
पास इन्होंने शीघ्र प्रवर्धन किया। ये १० पूर्व के ज्ञान और
वैदिक्यलक्ष्य-धर्म थे। इनका स्मरण-गमन महावीर से १० स्मरण
में हुआ।

१२३—अचलक—ये प्रमिष्ट शास्त्र थे। इन्होंने अनेक बौद्धों
को शास्त्रार्थ में पराजित किया था और जैन-धर्म की अनिराव
हर्षति की।

१२४—वामद—ये महाकवि थे। वामदार्थशास्त्रीक,
नेमिनिर्माणशास्त्र, काश्वातुशासनमदीक इनके रचे हुए ग्रंथ
हैं। सम्यक्त-साहित्य-ज्ञान से इनका सम्मान महाकवि कारिताराम
के समान है।

१२५—धनपाल—महाकवि धनपाल महाकवि कारिताराम के
समकालीन हैं। 'विषयमन्त्र' जो काश्मिर का जोड़ का ग्रंथ
है आपने लिखा है।

१२६—श्रीमान—ये प्रमिष्ट विद्वान् हो गए हैं। आपने भी
सम्यक्त में अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

१२७—समर्थन—ये शक्तिशाली सम्यक्त एवं साहित्य के विद्वान्
थे। इन्होंने अनेक बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। इनकी स्त्री
की कवि-विद्वत्ता की वजह से साहित्य (साहित्य) के रचने का प्रयत्न।

१२८—स्मरण-शक्ति—ये आपने प्रमिष्ट ग्रंथों के लिखने

इन्होंने लगभग १०० ग्रंथों की रचना की है। ये १७ वीं शती में हुए हैं। 'ज्ञान बिंदुप्रकरण, ज्ञानसार, नयप्रदीप, अक्षय्यात्मसार द्रव्यानुयोग तर्कना, प्रतिमाशतक' आदि इनके अनुपम ग्रंथ हैं।

१६३—राजेन्द्रसूरि—ये महान् आचार्य अभी हो गये हैं। इनका जन्म सं० १८८३ में हुआ था। इन्होंने एक 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' लिखा है जो सात भागों में छपकर तैयार हुआ है। दुनियाँ के समस्त सर्वश्रेष्ठ विद्याप्रेमियों ने इस ग्रन्थ की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। आपको कलिकालसर्वज्ञ माना जाता है। आपकी जीवनी छप चुकी है।

१६४-६५—जयसलमेर (राजपुताना), पाटण (मण्डिस-पुर) में अति प्राचीन जैन-मण्डार हैं। इनमें सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ अब भी मौजूद हैं। कोई-कोई ग्रन्थ ७-८ वीं शताब्दि के भी बताये जाते हैं। लेकिन दुःख है कि इनको आज हमारी अवहेलना और अधोगति के कारण, कृमि, दोमक खा रहे हैं।

१६६—चौदह पूर्व—उषाय (उत्पाद), अमंगलीय (अमराणीय) आदि १४ पूर्व कहे जाते हैं। ये पूर्व सधमे अधिक प्राचीनतम हैं। दुःख है कि ये चौदह ही पूर्व कभी के लुप्त हो चुके हैं।

१६७—द्वादशिकावत्सरदुष्काल—मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में १२ वर्ष का लग्ना एक वर्षकर दुष्काल पड़ा, जिसमें कतिपय विद्वान ऐसा मानते हैं कि जैन-शास्त्रों का सर्वथा लोप हो गया। त्रितना अंश कंठस्थ रहा वह फिर लिखा गया।

१६८—बंद—जैन-साहित्यावलोचन में ऐसा प्रगीत होता है

कि वेदों की रचना भगवान् आदिनाथ के समय उनके गणधरों ने की थी ।

१६६—जैन-दर्शन—जैन-दर्शन की महत्ता आज समस्त संसार स्वीकार करता है । सर्व श्री बालगंगाधर, गोखले, महामना मालवीयजी, तुकारामकृष्ण शर्मा आदि के विचार हम पूर्व दे चुके हैं ।

१७०—जैन-साहित्य में यह हज़ारों वर्षों पूर्व ही पता दिया गया था कि वनस्पतिकाय में जीव होता है । लेकिन आज तक संसार हमारे इस सिद्धान्त का उपहास करता आया है । लेकिन अद्य-अद्य विज्ञान-विद् कहने लगे हैं कि वृक्ष-लताओं में जीव होता है । उसे भी मनुष्य अथवा पशु-पक्षी कृमि के जीव के अनुसार दुःख, सुख का अनुभव होता है । अभी कुछ वर्ष पूर्व हमारे प्रसिद्ध विज्ञानज्ञ जगदीशचन्द्र बोस ने ही सर्व प्रथम यह सिद्ध कर संसार को चकित कर दिया था कि वृक्ष हँसता, खेलता एवं रोता है । इस विषय में वे अधिक शोध करते लेकिन दुःख है अब उनका देहावसान हो चुका है ।

१७१—अंग—आचार (आचार), सूत्रगङ् (सूत्रकृत), धारण (स्थान) इत्यादि कुल १२ अंग हैं जिनमें दृष्टिवाद अंग पूर्व के साथ ही विलुप्त हो गया है ऐसा माना जाता है । थोड़े में अंगों का विषय यहाँ स्पष्ट नहीं किया जा सकता ।

१७२—उपांग—ओषयाश्च (औपपातिक), राक्षसेनश्चि (राजप्ररणीय), जीवाभिगम आदि उपांग भी १२ हैं । उपांगों का अंगों के साथ अवश्य कुछ सम्बन्ध है ।

१०३—पयज्ञा—चक्षुराण (चक्षुःशरणा), आभर पयज्ञाया
(आभुरप्रत्ययान्ता), भक्तपरिणामा (भक्तपरिणामा) इत्यादी
१० पयज्ञा मन्त्र है ।

१७४—छेद-मूत्र—निमीह (निमीष), महानिमीह (महानिमीष) वक्त्रहार (व्यक्त्रहार) इत्यादि छेद छेद-मूत्र है ।

१३५—वा० मूलमूत्र—उत्तरप्रवण (उत्तराश्रयन), वायव्य (आश्रयन) इत्यादि चारमूल सूत्र हैं।

नमः शिवाय (नमः शिवाय), अस्तु योगदायिनी (अस्तु योगदायिनी)
शिव) व दश भूतल-मय है ।

२७६—गोमटोगा—यह एक सामान्य धार्मिक स्थल है।
इसका मुख्य जैन मठ न सिर्फ नदी के किनारे बसा हुआ है बल्कि
संरक्षित है।

१५४—नयनपत्र—यह अंग अवनतानय है। जैन विद्वानों ने नयनपत्र मानते हैं और इस मन्त्र से उनका बड़ा सुख प्राप्त होता है।

१५८—यस कार्यो जेतासमूह—इस प्रत्यक्ष के अन्तर्गत प्रविष्ट
होवाकार्यो (कार्य) हैं। इसका नेतृत्वगना से हो रहा मने जाहीन
हमारी से यह विनिश्चित जान है।

१०६—अथ भावित—यद् नहं वासिष्ठ प्रपद्ये । इवमेव
मया प्रोक्तं विद्वान् मन्त्रवर्तनः प्रपद्यते ॥

१८०—अ वा पुण्ड्रमक—यह भी वाणिज्य सम्बन्धी है ।

द्वि-पुष्पात्मा - यद्वा अन्विष्ट मन्त्र है, इत्यन्त्रादौ
अन्विष्ट मन्त्राणां, काव्यानां वा प्रमाणं लभ्यते ।

१८२—द्वादशकुलक—यह भी एक धार्मिक ग्रन्थ है ।

१८३—निर्वाणकलिका—यह भी एक धार्मिक ग्रन्थ है । यह आचार्य पादलिप्तमूर्ति-रचित है ।

१८४—भाषसंग्रह—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है । यह देवसेन भट्टारक का रचनाया हुआ है ।

१८५—तत्त्वमंगी न्याय—यह न्याय का उच्छ्रोति का ग्रन्थ है । इसका सर्वत्र अतिशय संमान है । ऐसे ग्रन्थ न्याय-विषय में कति थोड़े हैं ।

१८६—त्यागदस्तावर—यह न्याय का अद्भुत ग्रन्थ है । इसके रचयिता प्रसिद्ध आचार्य पार्श्वदेवमूर्ति हैं । यह ग्रन्थ १३ वीं शती में लिखा गया था ।

१८७—न्यायालोक—यह भी न्याय विषय का दृश्य ग्रन्थ है ।

१८८—रमेरकमलमाला—जैन-दर्शन का यह बहुत ही दिलीप और उच्छ्रोति का न्याय ग्रन्थ है । यह प्रभाकराचार्य-विरचित है ।

१८९—पुराण—हरिवंशपुराण, पद्मपुराण का १३ पुराण है । इन सबमें जैन-इतिहास संक्षेपतः वर्णित है ।

१९०—प्रवरविज्ञानशास्त्र-परिचय—यह मूल मन्त्रों में प्रेमचन्द्राचार्यकृत है । इसमें १४ अध्याय, १३ पञ्चानाम्, ६ बालुदेव, ६ प्रतिज्ञानदेव, ६ रत्नदेव, ६ रत्नदेव, ६ रत्नदेव का जीवन-परिचय है ।

१९१—सर्तकीति—यह प्रेमचन्द्राचार्यकृत रत्नदेव का

१०३—पयसा—चउशरण (चतुःशरण), आउर पयकस्याभणु (आनुरप्रस्थाप्यान), भक्तपरिषणा (भक्तपरिषा) इत्यादि १० पयसा ग्रन्थ हैं।

१०४—छेद-सूत्र—निमीह (निशीथ), महानिमीह (महा-निशीथ) वयहार (व्यवहार) इत्यादि छह छेद-सूत्र हैं।

१०५—चार मूलसूत्र—उत्तरप्रवण (उत्तमप्रवण), आव-रगय (आवगच्छ) इत्यादि चारमूल-सूत्र हैं।

नंदेमुन (नंदीसूत्र), अणुयोगदारमुत्त (अणुयोगदार-सूत्र) ये दो मूलिका-सूत्र हैं।

१०६—गोमटमार—यह एक अमूर्त्य धार्मिक ग्रन्थ है। इसका सर्वत्र जैन-समाज में ही नहीं बल्कि समस्त धर्म-संग्रहालों में सम्मान है।

१०७—नवतत्त्व—यह ग्रन्थ अवशोदनीय है। जैन विद्वानों ने नवतत्त्व माने हैं और इस ग्रन्थ में जन्मा बड़ा सुन्दर विवेचन दिया गया है।

१०८—नवशार्वांगिगणसूत्र—इस ग्रन्थ के रचयिता प्रसिद्ध उपाध्यायिकचर हैं। इसका जैन-दर्शनों में ही नहीं सर्व भारतीय दर्शनों में एक विशिष्ट स्थान है।

१०९—मन भावना—यह एक धार्मिक ग्रन्थ है। इसमें अनेक प्रसिद्ध विद्वान् सत्यवादी हेमचन्द्र गूरि हैं।

११०—त्रैकानुग्रहमन—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है।

१११—पुण्यकाला—यह भी धार्मिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में धार्मिक कल्याणों, पापों का प्रत्यक्ष संवर है।

ॐ परिशिष्ट -

प्रमुख ग्रन्थ है। राजा कुमारपाल के समय में इसी नीति के अनुसार शासन-सूत्र था।

११२—धर्माभ्युदय—यह उदयप्रमसूरिहृत महाकाव्य है।

११३-१४—विकान्तकौरव तथा मैथिलीकल्याण—ये दोनों उच्छकोटि के नाटक ग्रंथ हैं।

११५—पुरुषोत्तम—यह महाकाव्य है। चंपू उच्छकोटि का है।

११६—यशस्विलक—यह चंपू है और सोमदेव कृत है। यह ग्रन्थ ६वीं शती में लिखा गया था।

११७—शाकटायनव्याकरण—महर्षि शाकटायन वैयाकरण विरचित है जो पाणिनि से भी पूर्व हो चुके हैं। दुनिया इन्हें अब तक जैनेतर विद्वान् मानती थी लेकिन अब यह सर्व प्रकार सिद्ध होगया कि शाकटायन जैन थे। मद्रास कालेज के प्रोफेसर मो० गुस्ताफ आपटे शाकटायन को जैन मानते हैं और पाणिनि से पूर्व इनकी उपस्थिति स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध ग्रन्थकार शोपदेव का भी ऐसा ही मतव्य है।

११८—पातञ्जलि के परवात् प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य हेमचन्द्र ही माने जाते हैं। इनका बनाया हुआ व्याकरण साहित्य में अत्यधिक आदरणीय है।

११९—संस्कृत—संस्कृत से यहां अर्थ लौकिक-संस्कृत से है जो आदि प्राकृत का अन्यतम शुद्ध रूप कही जाती है।

२००—आदि-प्राकृत—आदि-प्राकृत से उस भाषा का अर्थ है जो अनार्यों के आगमन पर बनी। अर्थात् वैदिक-भाषा अनार्य भाषा के साथ मिलकर जिस स्वरूप को प्राप्त हुई वही

इसमें छोटे बड़े ८३ सौघरिखरी जैन-मन्दिर थे । प्रसिद्ध विज्ञान मण्डन इसी नगर के रहने वाले थे । विस्तृत वर्णन के लिये देखो 'श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भाग' पृथक् पृ० १६६ ।

२१३—लक्ष्मणी-तीर्थ—यह तीर्थ अलिगजपुर स्टेट में आया है । इसके नाम से पता चलता है कि यह लक्ष्मण के समय में अगर नहीं था तो भी लक्ष्मण के नाम के पीछे अपर्य इसकी स्थापना हुई है । वैसे इसके भूगर्भ में से निकलती हुई वस्तुओं के अवलोकन से भी यह अति प्राचीन सिद्ध होता है । इस तीर्थ के स्थल को ज्यों-ज्यों खोदा जाता है, अनेक अद्भुत-अद्भुत वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं । देखो श्री० य० वि० दि० भा० ४ पृ० २३० ।

२१४—अयुधगिरि—यह विशेष कर अभी आबू-पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जैन-तीर्थ की दृष्टि से इसका इस समय भी कितना महत्त्व है । वस्तुपाल तेजपाल का बनाया हुआ जैन-मन्दिर अब भी अपनी प्रकृत दशा में ही विद्यमान है । अनेक यूरोपीय शिल्प-शास्त्री इस मन्दिर की शिल्प-कला देखकर दंग रह गये हैं । इस मन्दिर के बनाने में साढ़े बारह कोटि सुवर्ण मुद्राएँ खर्च हुई थीं । ऐसा भव्य मन्दिर विश्व में भी अन्य कठिनतया ही उपलब्ध होगा ।

२१५—गिरिनारपर्वत—यह जूनागढ़ के पास आया है । मगवान् नेमिनाथ की दीक्षा, उनको केवल ज्ञान और उनका निर्वाण इसी पावन गिरि पर हुआ है । यह तीर्थ मूलतः जैनियों

कला की दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरी इसी गिरि में एक हाथी-गुफा भी है। यह गुफा प्राकृतिक है। डा० फर्ग्युसन लिखता है कि उदयगिरि की गुफाओं की भव्यता, शिल्प की लाक्षणिकता, और स्थापत्य की विगत ये सब इनकी प्राचीनता प्रमाणित करती हैं। देखो उ० हि० मां० जैन धर्म पृष्ठ २२३। ये गुफायें कलिंगपति सम्राट सारथेल को बनवायी हुई हैं। इसमें ४४ गुफायें हैं।

२२०—खण्डगिरि—उदयगिरि की गुफाओं के पच्छिम में खण्डगिरि की १६ गुफायें हैं। ये भी सम्राट सारथेल की ही बनवायी हुई हैं। शिल्प की दृष्टि से इनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। प्रसिद्ध पुगतत्त्वश एव शिल्प विशारद आमोली, मगमोहन, चक्र-वर्ती, ज्योच, फर्ग्युसन, स्मिथ, कुमार रामो आदि इन्हें जैन गुफा स्वीकार करते हैं। देखो उ० हि० मां० जैन धर्म पृष्ठ २२२।

२२१—एलोर-अजंठा गुफायें—अब तक सब इतिहासकार इन गुफाओं को बौद्ध गुफायें एक स्वर से बताते आये हैं, लेकिन अब ज्यों-ज्यों पुरातत्त्व वैज्ञानिक शोध करते आने हैं उन्हें अब अपने प्राकथन में भ्रम होता है और कतिपय शिल्प-विशारद तो यह भी मानने लग गये हैं कि ये गुफायें भी जैन गुफायें हैं।

२२२—मथुरा—वर्तमान मथुरा नगर से ३-४ मील के अन्तर पर अभी कंकाली-टीला का पता लगा है और उसकी खुदाई भी हुई है। इस टीले में से ई० सन के पूर्व की जैन-मूर्तियाँ, आयागपट्ट, स्तूपखंड निकले हैं। महाचक्रों के राशय में मथुरा

कभी मगर है यह वह शहीद सम्राटकी मही है जिसका मैं
इतिहास की दृष्टि से मारी महत्व है।

११३—देवदूत राक्षसाभ्यां च क्षेत्रमात्रं चैव तत्रैव मूर्तिं ५०
 कीदृशं कर्तव्यं । इयं मूर्तिं कीं प्रतिष्ठा १० वां शाली में दूरे है ।
 इसमें हमारी शिक्षा-कला की वस्तुवस्तु का जो क्या लगता हो
 है लेकिन साथ में वह भी विचारने को मिलना है कि क्षेत्र-कर्तव्य
 माफीत कात्र में बुद्धिजी भावपूर्ण से भी समझिए इन से
 देखा हुआ था । ऐसी ही एक क्षेत्र मूर्ति ५० कीदृश कर्तव्य
 प्रतिष्ठा नाव में भी है । वह भी समझाया है । देवों का
 की० कर्तव्य इस प्रकार भाग ११० पु० १०३, १०४ १८ ।

उत्तर—बहु लय की बात है कि वयन-साकसम-कारिणी मे
अग्निही वा विनये सायानाह दिने इतिदान मे इह विनय
वा वयोने वयोना अनेक इतिदानस्य एतत् नृत्त है ।

[illegible][illegible]

उत्तर—जी हाँ, यह कार्य हमारे लिए आवश्यक है और हमारे
विषयों को हमारे सामने रखना है : अतः हमारे लिए यह कार्य है।

के कारण हो इस जाति के मनुष्य गर्व कहलाये। संगीत-विद्या का प्रथम प्रकार इसी जाति से हुआ है।

२३२—जाटो-लिया ने कुछ ऐसी मूर्तियाँ निकली हैं जिन्हें लोग यौद्ध-मूर्तियाँ कहते हैं। इसमें किसी का दोष नहीं कि वे मूर्तियाँ यौद्ध हैं या जैन। जब तक किसी भी परोक्ष, निरोक्ष को जैन-मूर्तियों के चिन्ह, लक्षण भली भाँति विदित न हो वह जो प्रत्येक ध्यानस्थ एवं कायोत्तर्गत्य मूर्ति को यौद्ध ही कहेगा। लेकिन अब कोई-कोई लोग यह दाव खोचर करते हैं कि किसी समय में जैन-धर्म पुनिपा के अधिराज भाग में महात्मा गोवर्धन पुत्र के पूर्व ही फैला हुआ था। अब: इई सदा पूर्व की प्रत्येक ऐसी मूर्ति या लम्ब निर्विवाद रूप से जैन है।

२३३—रादववंश—भगवान् सोद्याय हमारे ६ वें बालदेव थे। इनके चचेरे भाई नेमिनाथ २३ वें तीर्थंकर थे और इनके अनुज गजलुहनाल सन्तुल्य केवली थे। इनका छोटा रादव भी जैन थे, ऐसा हमारे ग्रंथों में प्रथम प्रमाण मिलता है। [मेरी समझ में यहाँ छोटे का जय कोई संलग्न विरोध से न होकर गौरव या शान्ति से है।]

२३४—देवो नं० २। विरोध के लिये देवो प्रि० रा० पु० परित्र (पु० भा) भाग १।

२३५—भरत—यह भगवान् जगन्मोक्ष का पुत्र था और प्रथम पञ्चवर्षी हुआ है। यह राजन्याय करता हुआ भी सिद्धात्मा था। एक समय किसी ने यह दाव को कि भरत पञ्चवर्षी होकर बड़े सिद्धात्मा रह सक्य है। अब इस दाव का पक्ष

भरत को मिला तो भरत ने उस आदमी को पुलाया और व आदमी के हाथ में दही से 'मय हुआ पात्र देकर कहा, "जाओ तुम समस्त शहर में यह पात्र अपने हाथ में लिये हुए भ्रमण करके आओ; लेकिन यह ध्यान रखना कि एक बूंद भी मय दही का नीचे गिर पड़ा तो माणसादक तुम्हारा शिर वहीं प धड़ से अलग कर देंगे।"

अब वह आदमी समस्त नगर में भ्रमण करके लौटकर भरत के पास आया तो भरत ने देखा कि दही में से एक बूंद भी नहीं गिर पाई है। भरत ने उसे पूछा, 'भाई, तुमने नगर में क्या देखा और क्या सुना ?'

उस पुरुष ने उत्तर दिया, 'मैंने कोई पुरुष या वस्तु देखी और न मैंने कुछ सुना ही। मेरी तो सब हो इन्द्रियें इसी पात्र पर लगी हुई थी।' तब भरत ने उसे समझाया और कहा, 'भाई मैं इस दहीपात्र के समान मोक्ष को देखता हुआ इस असंगत संसार के मग्न रहता हूँ।'

२३६—अब २४ वें तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म हुआ था उसी समय सुमेरुपर्वत हिल उठा और इन्द्र का सिंहासन भी झोला उठा। देखो त्रि० श० पु० चरित्र (गु० भा) भाग १० पृ०।

२३७—भरत चक्रवर्ती और बाहुव्रत का इन्द्र-रण विभु है। ये दोनों भगवान् ऋषभदेव के पुत्र थे। दोनों में राज्यधिकार के लिये विवाद हो गया। अब दोनों ओर के विराजित जन-सैन्य रणाङ्गण में पहुँचे और युद्ध प्रारम्भ होने ही को था कि महामना बाहुव्रत ने भरत के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि राज्य प्राप्ति

के लिये निर्दोष जन-सैन्य का रक्त न बहा कर वह (बाहुबल) और भरत परस्पर द्वन्द्व-रण करें और जो जीते उसी को राज्य मिले। यह प्रस्ताव भरत ने सम्मत कर दिया और अन्त में बाहुबल विजयी हुए। लेकिन बाहुबल राज्य न लेकर वन में विरह होकर तपस्या करने चले गये और भरत को राज्याधिकार दे गये।

२३८—से २५१ देखो नं० १५ से २५ तक। विशेष कृत्त के लिये देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग १ से १० तक।

२५२—चन्द्रगुप्त मौर्य—यह मन्दवंश का उत्थेदक प्रख्यात
अर्थशास्त्री चाणक्य का शिष्य था। सम्राट चन्द्रगुप्त इतिहास
में प्रसिद्ध है। यहाँ विशेष बल्लभ की आवश्यकता नहीं है।
इतना कहना पड़ेगा कि जहाँ अन्य इतिहासकार सम्राट चन्द्रगुप्त
मौर्य को बौद्ध मानते हैं, यह जैन या और धुतकेवली भद्रबाहू
स्वामी का अनुयायी था।

२५२—मिल्यूकस—यह निकन्दर महान् का सेनापति था।
इसने भारत पर आक्रमण किया था, लेकिन सम्राट पन्द्रगुप्त के
आगे इसकी बुद्धि न पली और निपट होकर लौटा। मिल्यूकस
ने अपनी लड़की का विवाह सम्राट पन्द्रगुप्त के साथ करके
सन्धि की थी।

२१४—सीताल—यह बोटिंगट सीताल के नाम से प्रसिद्ध है। इसने अपने जीवन में अपने बहुत बड़े महान बिदे थे। यह बड़ा पौर था, बड़े दैवि यह अपने बोटि सुभरी से लड़ने को समर्थ था। इसकी पत्नी की यह नाम मैरी सुभरी था।

मेला के शीत के प्रभाव से ही भीषण का कुछ रोग समन हुआ था । विशेष के लिये देखो भीषण-रास या भीषण-परीय (गुलबर्ग में) ।

३५५—रातर्नि उद्यत—रात हीनमयनगर को राजा था।
 बड़ा प्रतापी था। इगने अनेक गुड दिये और मयने विजयी
 हुआ। अन्त में इसक मतमें वैराग्य न्यय हो गया और अपने
 भागिनेय को राजा नेकर दीक्षा प्रदण करपी।

२५:—सम्राट् संजिह—यह मगध का सम्राट् था और मगधान मदावीर का नाम भक्त था। इनके मगध में अपने ह दग्ग-कलावे प्रसिद्ध हैं जिनका यही वर्णन ग्यानाभाव से समझाये है। इसकी राजा वैष्णवा राष्ट्रार्थ पेडह की पुत्री भी और मदाभती था।

३५१—नंदिवर्धन—ये भगवान् महाबाहू के भाई थे और
भगवान् के परमानुयायी थे। इनकी गता नेष्टः शब्दार्थों में एक
ही रज्जा थी। नंदिवर्धन का शब्दशाय प्रसिद्ध है।

[illegible]

या : वागमर और नागमर दोनों भाइयों ने अपनी अलग-अलग
से ही अलग-अलग पुत्र दिए थे । दक्षिण कुमारपाल परितः ।

२६१ - आभार्य आनू - वह अणुविनयुर के महाभारत
भूमिपुत्र द्वितीय का वनापति भा और आभार्य भी रईयुक्त
भा । इनने एक-दूसरे की बार भूमिपुत्र आभार्यकारिणी को पालन
दिया था ।

२६२ - विमलराज - वह भूमिपुत्रों का महाभारत
भा । वह वन्य भा और अणुविनयुर भा । इनने अनेक
अणुविनयुरों को और आनू वन्य भा एक विमान में भी
अन्यथा भा ।

२६३ - वन्य - वह भूमिपुत्रों का महाभारत भित्तुपुत्र का
का महाभारत भा । वह अणुविनयुर का वन्य भा ।
इनका भा वन्य भा और आनू भूमिपुत्र वन्य भा । वन्य भा और
इनका पुत्री ने ही भित्तुपुत्र का राजा हुआ वन्य भा ।
दिया था । इसी भाई वन्य का परितः ।

२६४ - वन्य - वन्यभूमिपुत्र भी महाभारत भित्तुपुत्र का
महाभारत का वन्य भा । महाभारत भित्तुपुत्र का महाभारत
भा । वन्यभूमिपुत्र का ही वन्य भा ।

२६५ - भूमिपुत्र का वन्य भा ।

२६६ - वन्य - वन्यभूमिपुत्र भी महाभारत भित्तुपुत्र का

२६७ - वन्य - वन्यभूमिपुत्र भी महाभारत भित्तुपुत्र का
महाभारत भित्तुपुत्र का महाभारत भा । वन्य भाई वन्य भा ।
वन्य भाई वन्य भाई वन्य भाई वन्य भाई वन्य भाई वन्य भाई

हुदुरशाह ने सौगष्ट विजय करने को अपनी प्रबल सेना भेजी । लेकिन इन दोनों भाइयों की तलवार का वार-तुर्क न सह सके और भाग खड़े हुए । ये वीर होने के साथ ही बड़े दानो एवं धर्मोत्साह थे । इन दोनों भाइयों ने अपने जीवन काल में १३१३ मकर जैन मन्दिर बनवाये । ३३०० जैन-मन्दिरों का जोर्णोद्वार करवाया । ५०० पापघणालाएँ बंधवाईं । सात कोटि सुवर्ण मुद्राएँ खर्च कर पुस्तकें लिखवाईं और अगणित कुएँ, तालाब, धर्मशालाएँ, दानशालाएँ बनवाईं । पैसे का सदुपयोग ऐसा आज तक शासक ही किसी ने किया ही ।

२५१—देवो नं० २५४ ।

२५२—मैरा-शाह—ये महा पराक्रमी एवं दानवीर शाह थे । ये नाण्डू के रहने वाले थे । इनकी हवेली नाण्डू में आज भी इनके वैभव की स्मृति करती है ।

२५३—रामाशाह—ये मेहरशाह के भाई थे । मूल से इनकी मैराशाह का भाई कहा है । रामाशाह कितने पराक्रमी थे, निम्न पद्य से देखिये जो एक कवि ने इनकी प्रशस्ती में कहा है:—
संपै कहवाहा, जोधक, जादौ, मारय जोनी भौद्ध भजा ।
निरवार, पौदान, पन्देह, सोलंकी, देह, निसार, बिके दुवजा ॥
बङ्गुलर, ऊपुर, देहर, दोमर, गौड, गरेल, महेल मिली ।
दरबारि तुहारै रामनरेसुर सेरे राख दायीम हुली ॥
जे० जे० ५० ५० पौवा ।

१७२—श्री बर्मसी—निम्न पद्य से श्री बर्मसिंह का श्री
जीवन का सीखिये—

सूर्य और चन्द्र भी पृथ्वी पर उतर आते थे और भगवान् का उपदेश श्रवण करते थे ।

२८१—मदन राजर्षि—ये परमहंस महात्मा थे । इनके जीवन-चरित्र को पढ़ने से सबो अहिंसामय धृति को पालन करने में हितने संकटों का सामना करना पड़ता है का पता मिलता है ।

२८४—नं० ५० को देखिये ।

२८५—सात सौ मुनि एक समय ध्यानस्थ थे कि दुष्टों ने उनके पारों ओर काँटे लुण्ठालकर अग्नि लगा दी, लेकिन धन्य है सात सौ ही मुनि अडिग रहे और अन्त में धर्म की जय हुई ।

२८६—धर्मरुचि मुनि को किसी धावक ने आहार में बहुत दिनों का कड़वी तुम्बो का रायता अर्पण किया । मुनिराज आहार लेकर अपने स्थान पर आये । जब आहार करने लगे तो पता पड़ा कि रायता अनिष्टाय लक्ष्य है । आहार में निवृत्त होकर मुनिराज उस रायता को पात्र में लेकर बाहर अजीवाकुल स्थान पर प्रक्षेप करने गये । लेकिन उन्हें ऐसा कोई स्थान न मिला जहाँ किसी प्रकार का कोई जीवाणु न हो । निदान आप ही दसे पी गये और मोक्ष-पद को प्राप्त हुए । धन्य है ऐसे महामुनियों को ।

२८७—ऐसा कहते हैं कि हमारे अन्तर ७४ राश्ट्र ऐसे हो गये हैं जिनके समस्त दिशो-मण्डल भी विद्धि-विद्धि अविचन भी और समस्त २ पर दिशो के कारराश्ट्र इन मण्डलों में शून्य प्रकार सेते थे । कहते हैं कि मण्डलों के अन्त जो 'राश्ट्र' पद समझा है वह किसी मण्डल का बन्धन रहता हुआ है ।

२८८—आनन्दमण्डि—ये बड़े बख्शदार थे । १६ बरौद

● परिशिष्ट ●

स्वर्ण-मुद्राओं के पति थे। इनके गोकुल में ४०००० गौर्द थीं।
ये जहाजों द्वारा व्यापार करते थे। ये बाण्ड्य माय के निवासी
थे और मगवान महावीर के मुख्य भावकों में थे।

२८२—सहालमेष्टि—ये आति के कुम्हार थे। मगवान
महावीर के मुख्य भावकों में थे। ये तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के
अधिपति थे और इनकी दुकानें अनेक देशों में थीं। इनकी
बड़ी २ दुकानें १०० थीं।

२८०—महारावक—ये भी मगवान महावीर के मुख्य
भावक थे। ये २१ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के स्वामी थे और इनके
गोकुल में ८०००० गौर्द थीं। ये रात्रगृहों के रहने वाले थे।

२८१—पुत्रतणीरावक—ये भी मगवान महावीर के मुख्य
भावक थे। ये १८ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के स्वामी थे। इनके
गोकुल में ८००० गौर्द थीं।

२८२—विनदधमेष्टि—ये महा धनकुंवर मेष्टि थे। ये
सोमारपुर के रहने वाले थे। ये ब्रह्मदेव मूरि के समस्त
व्यवस्थित थे।

२८१—वज्रामेष्टि—इनकी कथा सर्वाधिक सर्वत्र प्रसिद्ध
है। ये भी बड़े वनाध्य थे। इन्होंने रिद्ध-मिद्ध को ब्रह्म वीणा
प्रदत्त की थी।

२८४—अभिमत—ये भी अगुल देव्य के स्वामी थे।
इन्होंने भी समस्त रिद्धिमिद्ध को ब्रह्मदेव सर्वत्र प्रदत्त
दिया था।

२८५—अगहृष्टर—ये अक्षयिपुर (कटक) के अगहृष्टर

विशजदेव के समय उपस्थित थे। इन्होंने पंचवर्षीय दुष्काल में जो उस समय पड़ा था करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं का अन्न क्रय कर दानशालाएँ भोजनालय खोले थे और दीन, छुधित जनता का रक्षण किया था।

२१६—प्रतिक्रमण अर्थात् रात्रि में जाने, अनजाने मन, वचन और काया से किये गये, फरवाये गये तथा अनुमोदित सावध कर्मों का प्रायश्चित्त, आलोचना प्रातः प्रद्युम्न मुहूर्त में जाग कर सर्व जैन आवाल धृद्ध किया करते थे ।

२६७—स्वाध्याय, पूजन, दान, संयम, तप एवं गुरु-भक्ति ये प्रत्येक आवश्यक के दैनिक आवश्यक कर्तव्य थे ।

२१८—यदित्तु-सूत्र—इस सूत्र में ५० गाथा हैं । इन गाथाओं से कर्तव्याकर्तव्य का परिचय मिलता है ।

२६६—सुदर्शन श्रेष्ठि—इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

३००—शाकटायन—इनका भी वर्णन ऊपर हो चुका है।

३०१—त्रयगुण—इसको समवशासन भी कहते हैं। समव-
शासन की रचना हर्य देवतागण करते थे। देखो भगवान के
चारह गुण और आठ प्रतिहार्य का वल्लेख।

३०२—ध्यान—नं० २८ देखिये ।

२०३—पुस्तक—नं० २६१ देखिये ।

३०४—नंदिनोदय—ये बनारस के रहने वाले थे। भगवान् महावीर के अनन्य भक्त थे। ये भी १२ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के स्वामि एवं ५०००० गौओं के स्वामी थे।

अकलर करने का निमंत्रण दिया था। इसी पक्षी के काले कान के कारण आज हिन्दुस्तान के दो बड़े मरुड हो रहे हैं।

३०५-३०६—दिगंबर—दिह + अंबर, दिसा हो जिनका बल है वन्हे दिगंबर कहते हैं।

श्वेतान्बर—श्वेतवस्त्र पहिने वालों को श्वेतान्बर कहते हैं।

किसी समय जैनधर्म मरुड था। दुर्भाग्य से इनके ये वक्त्र दो मरुड हो गये। क्या हुआ? यह प्रश्न विवादस्पद है। इस प्रश्न को छूने का यहाँ नेत्र न बिचार है और न इसको मैं यहाँ हल करना उचित समझता हूँ।

३०७-३०८—समय पाकर श्वेतान्बर सम्प्रदाय के भी छिर दो दल हो गये। स्थानकवासी जो मूर्ति को नहीं मानते हैं और दूसरे मूर्तिपूजक जो मूर्ति की पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं। स्थानक-वासी सम्प्रदाय को कबीलवादी एवं हृद्दक भी कहते हैं। इन सम्प्रदाय को छदि करने वाले भीमन् लोकाराह कहे जाते हैं। काले पाकर रत्नैः रत्नैः मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में भी छाबारों के नाम क पीड़े अलग अलग दल स्थानित होते गये और ये दल आज भी जो संख्या तक पहुँच गये, वो गण्य कहलाते हैं। लोकाराह के बितने ही जीवन-वरिष्ठ हल चुके हैं। विरोध के सिधे उनमें से कोई देखें।

३०९—नेरडये—यह स्थानकवासी सम्प्रदाय में से निकला हुआ एक और पद है। इसकी छदि करने वाले भिन्नमयी कहे जाते हैं। भिन्नमयी स्थानकवासी साधु रत्ननाथमल्लों के शिष्य

३३०—नृपकलिक—यह अकन्तो का राजा था। यह हिन्दु धर्म का कट्टर अनुयायी था। इसने जैन एवं बौद्धों के ऊपर अकथनीय अत्याचार किया था।

३३१—यह नंबर भूल से 'दुष्टरथ' पर लग गया है।

३३२—पुष्यमित्र—यह शुंगवंश में आदि और प्रसिद्ध राजा हुआ है। यह विक्रम की द्वितीय शती में हुआ है। यह भी हिन्दु-धर्म का कट्टर पक्षपाती था। इसने मज्झिमेय के कारण जैन राजाओं के प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र को जला दिया था। इसने अपने देश में जैन साधुओं का आगमन रोक दिया था।

३३३—महात्मा गौतमबुद्ध—ये बौद्धधर्म के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। ये भगवान् महावीर के समकालीन थे। इन्होंने भी द्विजों की हिंसाश्रुति का प्रवर्तन स्पष्ट किया था। आज बौद्धमत संसार के एक सिद्धांत भाग पर फैला हुआ है।

३३४ देसो नं० २

३३५ देसो नं० ३२२

३३६—शौरंगजेव—यह बड़ा अत्याचारी मुगल सम्राट था। इसने जैन-धर्म के कर्मकांड, मेले, वरपांडे रख यात्राओं पर रोक लगा दी थी। कितने ही मंदिर मस्जिद बनवा दिये गये थे।

३३७—देव—जाहें-परिवद—यह विजयन में एक सम्राट है। इसे अंग्रेजों में हाउस ऑफ जाहेंम् कहते हैं। मारतशासियों की अपने अभियोगों की, स्त्रियों की अतिम प्रायश्चात इस परिवद के समझ करनी पड़ती है और इस परिवद का किया हुआ व्याप सर्वोपरि एवं अतिम होता है। इस रवेकाबर और दिगंबर सम्मेलनगर के मुकरमे में जाहें-परिवद तक बढ़ चुके हैं।

जैन-जगती का शुद्धाशुद्ध पत्र अतीत खण्ड

छंद	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	धीण	धीन
१	२	ये स्वर, प्राण	निःस्वर, राग
१	३	हार	सार
१	४	मन * सार दें	मन * पूर्ण कर

वर्तमान खण्ड

१२५	३	श्वेताम्बर	श्वेतकम्बर
१७६	१	संगीत ज्ञाता	संगीत-ज्ञाता
१६३	४	कार	कर
२०७	४	आहित	हित
२२२	४	मात्र	मातृ
२३०	४	शील	शीन
३१८	३	वन	घन

३३०—नृपकलिक—यह अवन्ती का राजा था। यह शिव धर्म का कट्टर अनुयायी था। इसने जैन एवं बौद्धों के ऊपर अकथनीय अत्याचार किया था।

३३१—यह नंबर भूल में 'दुष्टदृश्य' पर लग गया है।

३३२—पुण्यमित्र—यह शुंगवंश में आदि और प्रसिद्ध राजा हुआ है। यह विक्रम की द्वितीय शती में हुआ है। यह भी हिन्दु धर्म का कट्टर पक्षपाती था। इमने मतद्वेष के कारण जैन राजाओं के प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र को जला दिया था। इमने अपने देश में जैन साधुओं का आगमन रोक दिया था।

३३३—महारमा गौतममुद्द—ये बौद्धधर्म के स्थापक माने जाते हैं। ये मगधान् महाकोर के समकालीन थे। इन्होंने मी द्विजों की हिंसाशूलि का प्रवृत्त व्यवहन किया था। बाद बौद्धमत संसार के एक निहाई भाग पर फैला हुआ है।

३३४ दस्तावेज नं० २

३३५ ब्रह्मो ग० ३३३

३३६—श्रीरामजी—यह कहा क्यावाणी सुगल मयाद का।
इसने प्रेम-धर्म का कामका, मेने, बरगोड़े रख यात्रा-भी पर गेह
जगा दी थी। दिग्गने ही मईर मईरद बनवा दिये गये थे।

३३७-३८—**आहं-वसिष्ठ**—यह विज्ञान में एक मन्त्र है।
इसे अथर्व में हाउम आदि आहंम कहते हैं। मानवकर्मिणी को
अपने अन्तर्यामी की, भक्तों की अन्तः प्रार्थना। इस वसिष्ठ के
मन्त्र का अर्थ यही है और इस वसिष्ठ का हिता दुष्टाभ्युप-
सर्गार्थ वर्ष अन्तः होता है। इस इन्द्रायाम और शिवाय
मन्त्रेन्द्रायाम के मन्त्रम में आहं-वसिष्ठ मन्त्र कहेंगे।

जैन-जगतों का मुद्रामुद्र पत्र

अतीत स्वर्ग

पंक्ति	वर्ग	मुद्रा	मुद्रा
१	१	कनक	कनक
१	२	दे मार, प्रण	निष्कार, मार
१	३	कार	कार
१	४	मन " मार दे	मन " मार दे

वर्तमान स्वर्ग

१२५	३	मोक्षप्रदा	मोक्षप्रदा
१७५	१	मोक्षप्रदा	मोक्षप्रदा
१८२	४	कार	कार
२००	४	कार	कार
२२२	४	कार	कार
२२०	४	कार	कार
२१८	३	कार	कार